छप गया ! छप गया ! ! छप गया ! ! !

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य

(लेखक — श्री ० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न गुरुकुल कांगड़ी)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं—

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के वेदोपाध्याय श्री पं ० चंद्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य—जगत् का बड़ा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है। मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते हैं—

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है। मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था। इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशन में समर्थ हो सकें।

श्री मा० आत्माराम जी एजुकेशनल इन्स्पेक्टर बड़ोदा लिखते हैं।

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा। इस ग्रन्थ ने एक बड़ी भारी कमी को पूर्ण किया है। इस अनुसंधान - युगमें प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए —ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगलवाद कहता हूं। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को अवश्य पढना चाहिए। पृष्ठसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥) रु ० है।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० , आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य ।८आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ८आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेंगी।

पता-प्रबन्धकर्ता अलंकार गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

लेखक– प्रोफेसर नन्दकिशोर विद्यालंकार.

पुनर्जन्म.

भूमिका लेखक– श्री. १०८ स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

निश्चय जानिये आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं, और सदा रहेंगे। इसलिये यदि आप को 'मृत्यु' के इस भीषण नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह जानना हो कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्माकी क्या गति होती है। पितृयान और देवयान मार्ग क्या है। उपनिषदों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कितने ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना चाहते है। यदि आप जानना चाहते हैं कि किस प्रकार आजकल के धुरन्धर पश्चमीय विद्वान् आपके प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते जाते हैं। पश्चिमके घोर नास्तिक वाद तथा डर्विन के विकास-वाद की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं तो इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

इस ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपक्षियों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा। सृष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकारण को अधुनिक विज्ञानके साथ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है। इस ग्रन्थसे आपको जर्मनी मे किये गये घोडों पर नवीन परीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा। ग्रन्थका विषय दार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रक्खागया है – इस लिये यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। श्री. स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान् क्या लिखाते हैं देखियेः—

"ग्रन्थकर्त्ताने 'पुनर्जन्म' की सचाई को जनसाधारणके आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषतः हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की है।"

श्रीयुत डाक्टर गङ्गानाथ झा, वाइस चान्सलर अलाहाबाद युनिवर्सिटी।

"मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें 'पुनर्जन्म' सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशदरूपमें रखनेमें ग्रन्थकर्ताको पूर्णतया कृतकार्यता हुई है। और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं।

(श्री० डा० प्रभुदत्त शास्त्री एम० ए० पी०एच० डी०, प्रेसिडेन्सी कालेज-कलकत्ता युनिवर्सिटी)

"ग्रन्थकर्ताकी मूल पुस्तकको मैंने देखा था और प्रशंसा की थी–मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ताने इसे प्रकाशित किया और हिंदी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो। (बा० भगवान्दास एम० ए० बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।)

पं० नन्दकिशोर विद्यालंकार, C/o गोबीला अँण्ड कम्पनी ८।२ हेस्टिंग्स स्ट्रीट, कलकत्ता.

वर्ष ६
अंक ७
क्रमांक
६७

आषाढ
संवत १९८२
जुलै
सन १९२५

वैदिक धर्म

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक-- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

अन्न देने वाली मातृभूमी ।

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वाव्रधानाम् । ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि निषीदेम भूमे ॥ २९ ॥

अथर्व० १२ । १ ।

(विमृग्वरीं) विशेष खोज करने योग्य (ब्रह्मणा वावृधानां) ज्ञानसे बढने वाली, (ऊर्जं) बलकारक और (पुष्टं) पुष्टिकारक घृत और अन्न का भाग (बिभ्रतीं) धारण और पोषण करने वाली (क्षमां पृथिवीं) विस्तृत मातृभूमि की मैं (आवदामि) प्रशंसा करता हूं कि हे मातृभूमे ! तुझपर (अभिनिषीदेम) हम सब बैठे रहें ।

अर्थात् मातृभूमिमें ही रह कर उसकी सेवा करें ।

औषधियोंका महामख !

यज्ञ विधिके विषयमें शास्त्रचर्चा करते हुए ऋषि प्रश्न करते हैं—

ऋषय ऊचुः—

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम्। पूर्वे स्वायंभुवे सर्गे यथातत्प्रब्रवीहि नः ॥ १ ॥ अन्तर्हितायां संध्यायां सार्धं कृतयुगेन तु। कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा ॥ २ ॥ ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने। प्रतिष्ठितायां वार्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च ॥ ३ ॥ वर्णाश्रमप्रतिष्ठानं कृत्वा मन्त्रैश्च तैः पुनः। संहितास्तु सुसंहृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ॥ ४ ॥

मत्स्यपुराण अ० १४३

" ऋषि पूछने लगे- कि स्वायंभुव मनुके समय त्रेतायुगके प्रारंभ में यज्ञका प्रचार कैसा हुआ ? सत्ययुग के साथ उस युगका संधिकाल समाप्त होनेके पश्चात् त्रेतायुग प्रवृत्त होनेके समय कैसी यज्ञ व्यवस्था शुरू होगई ? ग्राम पुर नगर आदि की रचना होनेके पश्चात्, कृषि आदिसे औषधियों की उत्पत्ति होनेके नंतर, जीवन साधन के नाना कामधंदे शुरू होनेके पीछे, वर्णाश्रम धर्मकी प्रतिष्ठा होने के पश्चात् उन वेदोक्त मंत्रों द्वारा यज्ञ का प्रचार किस ढंगसे हुआ ? यह सब हमें कहो। "

इस कथन का तात्पर्य यह है कि सत्य युगमें ग्राम नगर आदि बने नहीं थे, कृषिसे उत्पन्न होने वाले धान्य आदि बनने नहीं लगे थे, अर्थात् इस प्रकार कृषिका उत्कर्ष नहीं हुआ था, गृहादि निर्माण भी लोग नहीं करते थे, यह सत्ययुग कि जिस में लोग केवल जंगल में ही रहते थे और जो कुछ "अ-कृष्ट-पच्य" अर्थात् कृषिसे उत्पन्न न हुआ हुआ ही कंद मूल फल फूल आदि जो कुछ मिले खा लेते थे, उस समय जो कुछ हुआ होगा वह बात और है; परंतु जिस समय ग्राम और गृह बने, कृषि की उन्नति होकर विविध धान्य बनने लगे तथा आश्रम और वर्ण की व्यवस्था ठीक बनगई तब त्रेतायुगमें किस प्रकार यज्ञ संस्था प्रचलित होगई ? इस प्रश्नका उत्तर उक्त पुराणही दे रहा है—

एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्सूतः श्रूयतां तत्र चोदितम्।

सूत उवाच–

मन्त्रान्वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्मसु। तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्प्रभुः ॥ ५॥ दैवतैः सह संहृत्य सर्वसाधनसंवृतः। तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ॥ ६ ॥ यज्ञकर्मण्यवर्तन्त कर्मण्यग्रे तथर्त्विजः। हूयमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः ॥ ७ ॥ संप्रतीतेषु देवेषु साम गेषु च सुस्वरम्। परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च ॥ ८ ॥ आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषु च। आहूतेषु च देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा ॥ ९ ॥ य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते। तान्यजन्ति तदा देवाः कल्पादिषु भवान्ति ये ॥ १० ॥ अध्वर्युप्रैषकाले तु व्युत्थिता ऋषयस्तथा। महर्षयश्च तान्दृष्ट्वा दीनान्पशुगणांस्तदा ॥ ११ ॥ विश्वभुजं ते त्वपृच्छन्कथं यज्ञविधिस्तव ॥ १२ ॥

मत्स्यपुराण अ० १४३

"उक्त प्रश्न श्रवण करके सूत कहने लगे कि—वैदिक मंत्रोंका विनियोग यज्ञकर्म में करके विश्वभुक् इंद्रने यज्ञका प्रचार किया। देवताओंका संगठन किया, सब यज्ञके साधन इकट्ठे किये और अश्वमेधका प्रारंभ हुआ जिसमें अनेक महर्षिभी प्राप्त हुए थे। इस यज्ञमें अनेक ऋत्विज अनेक प्रकारके हवि अग्निके अंदर अर्पण करने लगे। जब सुस्वर सामगान होने लगा, और पशुओंका आलंभन चलने लगा, यज्ञका सेवन करनेवाले देव जब आहूत हुए, उस समय दीन पशुगणोंका अवलोकन करके महर्षिगण उठे और इंद्रसे पूछने लगे कि तुम्हारा यज्ञविधि क्या है ?"

ऋषिलोग इस रीतिसे पशुयज्ञ देखकर क्रोधित हो गये क्यों कि " प्राचीन कल्पोंमें इंद्रियों को ही यज्ञभाग लेनेवाले देव मानकर उनका ही यजन किया जाता था।" यह ऋषियोंको आध्यात्मिक यज्ञ ज्ञात था। और इस आध्यात्मिक यज्ञ को महर्षियोंकी संमति भी थी। इंद्र यही आध्यात्मिक यज्ञ कर रहा है, इस भावनासे ऋषिमहर्षि इंद्रके इस यज्ञमें आगये थे, परंतु जब उन्होंने इसमें दीन पशुओंकी हिंसाका प्रसंग देखा, तब वे बडे दुखी होगये, और उन्होंने पूछा कि " रे इंद्र ! तू क्या कर रहा है ? किस विधिसे तेरा यज्ञ हो रहा है !"

अर्थात् जिस यज्ञमें पशुकी हिंसा होगी वह यज्ञ ऋषियोंको संमत ही नहीं था। ऋषिलोग तो उस यज्ञके पक्षमें थे, कि जिसमें धान्य समिधा आदिकाही हवन हो। ऋषियोंकी संमति

पशुमांस हवन के लिये कदापि मिलना संभवही नहीं था। पशुमांस का हवन जिसमें होता है वैसा यज्ञ ऋषियोंने कभी देखा ही नहीं था और न सुना था। इस लिये इंद्रका यह याग देख कर ऋषि महर्षिगण हैरान होगये और घबरा कर इंद्रसे पूछने लगे कि " हे इंद्र ! तू किस विधिके अनुसार यज्ञ कर रहा है? "

ऋषियोंके प्रश्नमें ही हिंसा कर्मका पूर्ण निषेध है। यह अश्रुत पूर्व बात जो ऋषिमहर्षियोंने यहां देखी, वह इंद्रकी ही नवीन बात थी; जिसके साथ ऋषि लोग परिचितही नहीं थे। ऋषि-लोग वैदिक यज्ञको पूर्णतासे जानते थे, और वे समझते थे कि वैदिक यज्ञमें हिंसाका नाम निशान भी नहीं था। इस लिये वे फिर कहते है —

पशुबलिकी नवीन प्रथा।

अधर्मो बलवानेष हिंसा धर्मेप्सया तव । नवः पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम ॥ १२ ॥ अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया। नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ॥ आगमेन भवान्धर्मं प्रकरोतु यदीच्छति ॥ १३ ॥ विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणा-व्यसनेन तु । यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिमोषितैः ॥ १४ ॥ एष यज्ञो महानिन्द्र स्वयंभुविहितः पुरा । एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ उक्तो न प्रतिजग्राह मानमोहसमन्वितः ॥ १५ ॥

" ऋषि कहते हैं- हे इंद्र ! यह बडाही अधर्म है। धर्मके नामसे तू हिंसारूप अधर्म कर रहा है ! तेरे इस यज्ञमें यह पशुका विधि एक (नवः विधिः) नवीन ही बात है। तूने यह धर्म का नाश करनेके लिये पशु ओं द्वारा अधर्म ही शुरू किया है !!! यह धर्म नहीं है। यह अधर्म ही है। हिंसा को धर्म नही कहते हैं। यदि तुम्हे यज्ञ कर्म करना है, तो वैदिक विधिसे करो। दुर्व्यसनी बनना छोडकर विधिके अनु-सार धर्मसे यज्ञ करो। हे इंद्र ! यज्ञीय धान्यके बीजोंसेही यज्ञ करनेका विधि है। यही यज्ञ स्वायंभुमनुने पहिले कालमें कहा था। इस प्रकार ऋषियों ने इंद्रको बहुतही समझाया, परंतु इंद्रने ऋषियों कथन माना नहीं। "

इस ऋषिवचनके अंदर यह स्पष्ट हुआ है कि (१) वैदिक धर्मके अनु-सार धान्यों और बीजोंका ही हवन इष्ट है (२) यज्ञमें वैदिक विधिके अनुसार पशुहिंसा नहीं है, (३) यज्ञमें पशु-हिंसा का प्रचार नवीन है और व्यसनी वृत्तिके कारण हुआ है, इसी लिये उक्त ऋषिवाक्य में व्यसनी न बननेका उप-देश है। (४) हिंसा करके धर्मका आचरण नहीं हो सकता। (५)

स्वायंभुव मनुने जो यज्ञ कहा था, उसमें पशुवध नहीं था। इत्यादि बातें ऋषि वचनमें आगई हैं, उनका मनन करना योग्य है। इसके पश्चात्—

दोनोंका शास्त्रार्थ।

तेषां विवादः सुमहाञ्जज्ञे इन्द्रमहर्षिणाम्। जंगमैः स्थावरैः केन यष्टव्यमिति चोच्यते॥ १६॥
ते तु खिन्ना विवादेन शक्त्या युक्ता महर्षयः। सन्धाय समम् इन्द्रेण पप्रच्छु खचरं वसुम्॥१७॥

"इस रीतिसे इंद्र और महर्षियोंके बीचमें बडा शास्त्रार्थ छिड गया। स्थावर हव्यसे हवन होना चाहिये यह ऋषियोंका पक्ष था और वह वेदानुकूल भी था। जंगम पशु आदिसे यज्ञका हवन करना चाहिये यह क्यमनी इंद्रका पक्ष था। ऋषियोंकी बात इंद्र मानता नहीं था। इस लिये इंद्रको समझाते समझाते ऋषिमहर्षि शास्त्रार्थकी युक्तियां देते देते थक गये। अत में दोनोंने निर्णयके लिये सम्राट् वसु महाराजसे पूछा।"

ऋषि महर्षि वेदज्ञान से परिपूर्ण होने पर भी पशुयज्ञके पक्षपातीयोंको समझाने मे असमर्थ हुए। फिर हमारे जैसे स्वल्प बुद्धिवालों से क्या बनेगा? पशुमांस का प्रलोभन इतना प्रबल है!! अस्तु। इस शास्त्रार्थका वृत्तांत आगे देखिये—

ऋषय ऊचु—

महाप्राज्ञ त्वया दृष्टः कथं यज्ञविधिर्नृप। औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं नस्तुद प्रभो॥ १८॥

सूत उवाच—

श्रुत्वा वाक्य वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम्। वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह॥ १९॥

'ऋषि पूछने लगे— कि हे उत्तानपादके वंशज वसुराजा! तूने कौनसा यज्ञविधि देखा है, कह। हमारी आशंका का समाधान कर।'

"सूत बोले— कि उन ऋषिमुनियोंका प्रश्न सुनकर वेदशास्त्रके अनुसार वचनोंका बलाबल न विचारते हुए ही यज्ञका तत्त्व वसुराजा कहने लगा।"—

यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिव। यष्टव्य पशुभिर्मेध्यैरथ मूलफलैरपि॥ २०॥ हिंसा स्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागम। तथैते भाविता मन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः॥ २१॥ दीर्घेण तपसा युक्तैस्तारकादिनिदर्शिभिः। तत्प्रमाणं मया प्रोक्तं तस्माच्छमितु मर्हथ॥ २२॥ यदि प्रमाणं स्वान्येव मन्त्रवाक्यानि वो द्विजा। तथा प्रवर्ततां यज्ञो ह्यन्यथा माऽनृत वचः॥ २३॥

"राजा वसु बोला— कि द्विजोंको

मेध्य पशुओंसे तथा फल मूलोंसे ही यज्ञ करना उचित है । यज्ञका स्वभाव ही हिंसा है यह मैंने देखा है । महर्षियोंने मंत्रों को जाना है जो बडे तपस्वी थे और दीर्घ दर्शी अर्थात् तत्त्वज्ञानी भी थे । इसलिये यह प्रमाण मैंने कहा है अतःआप शांत हूजिये । यदि आपको भी वेदमंत्र ही प्रमाण है तो वैसा पशुयाग ही कीजिये और व्यर्थ झूठ बोलना आपको उचित नहीं है । "

इस तरह सभाका मध्यस्थ और अध्यक्ष सम्राट् वसु भी ऋषिमहर्षियोंके विरुद्ध हुआ और उन्होने देवोंका पक्षपात करके देवोंके हकमें अपनी संमति दे दी इसका कारण यही था कि वसुराजा भी अधिकार संपन्न देवों के विरुद्ध बोलना पसंद करता नहीं था । ब्राह्मणोंकेपास स्वर्गकी कूंजियाँ नहीं है, ऐसा समझकर उन्होने देवोंके पक्षमें इस प्रकार कहा। परंतु इसका परिणाम उसको बहुत बुरी रीतिसे भोगना पडा-

एवं कृतोत्तरास्ते तु युज्यात्मानं ततो ऽधिया । अवश्यं भाविनं दृष्ट्वा तमथो ह्यशपंस्तदा ॥ २४॥
इत्युक्तमात्रो नृपतिः प्रविवेश रसातलम् । ऊर्ध्वचारी नृपो भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥ २५ ॥
वसुधातलचारी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् । धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः ॥ २६ ॥

यह राजाका भाषण श्रवण करके ऋषियोंने उसे शाप दिया 'कि तेरा अधःपात होवे ' इस से उसका अधःपतन हुआ । धर्मके विषयमें सब संशयोंका निराकरण करनेवाला राजा वसुभी इस प्रकार पतित होगया । "

धर्मके विषयमें इतनासा पक्षपात करनेके कारण सम्राट् वसुमहाराज की ऐसी अवनति हो गई । यह है यज्ञमें पशुवध के पक्षपात का परिणाम ! यदि कोई साक्षात् पशुवध करेगा, तो उसका क्या होगा यह विचारवान् पाठक विचार करके ही जान सकते हैं । इतना प्रभावी वसुराजा भी यज्ञमें पशुहिंसाका पक्षपात करनेके कारण गिर गया और फिर शीघ्र उठ नहीं सका। उन्होंने स्वयं हिंसा नहीं की, परंतु यज्ञमें पशुहिंसाका केवल समर्थन ही किया । इससे ही पाठक जान सकते हैं कि, पुराणोंका आशय क्या है । पुराणग्रंथ पाठकों को अहिंसामय यज्ञ की ओर ही लाना चाहते हैं, इस विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखिये—

तस्मान्न हिंसा यज्ञे स्याद्यदुक्तमृषिभिः पुरा । ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवंगताः ॥ २९ ॥
तस्मान्न हिंसायज्ञं च प्रशंसंति महर्षयः । उञ्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ॥ ३० ॥
एतद्दत्वा विभवतः स्वर्गलोके

प्रतिष्ठिताः। अद्रोहश्चाप्यलोभश्च
दमो भूतदया शमः ३१ ॥ ब्रह्म-
चर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा
धृतिः। सनातनस्य धर्मस्य मूलमे-
तद्दुरासदम् ॥ ३२ ॥

"इसलिये यज्ञमें हिंसा नहीं होनी चाहिये यह बात प्राचीन कालसे ऋषि कहते आये हैं, कोटिशः ऋषिलोग अपने तपोंसे ही स्वर्गको चले गये और इसी कारण हिंसामय यज्ञकी प्रशंसा ऋषि लोग नहीं किया करते हैं। यथाशक्ति फलमूल शाक आदि जो अपने पास हो वह दे कर अर्थात् उसका दान कर स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं। अद्रोह, दम, शम, भूतदया, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, मनकी कोमलता, क्षमा, और धैर्य यह सनातन धर्मका मूल है।" इसमें भूत-दया अहिंसा ये ही प्रधानगुण है, इस लिये सनातन धर्मके यज्ञमे हिंसा नहीं होनी चाहिये। यह निश्चित बात है।

अर्थात् सनातन वैदिक धर्मके अनुसार यज्ञमे पशुकी हिंसा अभीष्ट ही नहीं है। पूर्वोक्त यज्ञीय बीजोंका हवन करना ही वैदिक यज्ञमें इष्ट है और इस प्रकार होने वाला निर्मांस यज्ञ ही सच्चा वैदिक यज्ञ कहलाता है।

यह देव और ऋषियोंके शास्त्रार्थका सार है। इस शास्त्रार्थ के समय स्वयं वसुराजा सभापति था। परंतु उसने पक्षपात किया इसलिये उसका पतन हुआ। (यही कथा वायुपुराण अध्याय ५७ में भी न्यूनाधिक पाठभेदसे आगई है।)

इस शास्त्रार्थ की बात से पता लगा कि मत्स्यपुराण और वायुपुराण की संमति तो निर्मांस यज्ञ के विषयमें ही स्पष्ट है। इसमें किसी भी प्रकार कोई विरोध किसी को होही नहीं सकता। क्यों कि उक्त श्लोकोंका अर्थ बिलकुल स्पष्ट है।

यही शास्त्रार्थका वृत्तांत महाभारतमें भी है, वहांके कुछ श्लोक देखिये—

महाभारतकी साक्षी।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरा-
तनम्। ऋषीणां चैव संवादं त्रिद-
शानां च भारत ॥ २ ॥

म. भारत. शांति अ. ३३६

"ऋषि और देवोंके शास्त्रार्थ का पुरातन इतिहास यह है।" इस श्लोक के पश्चात् कोष्ट में दिये श्लोक मद्रास के महाभारतमे अधिक आते हैं —

[इयं वै कर्मभूमिः स्यात्स्वर्गो भो-
गाय कल्पितः। तस्मादिन्द्रो महीं
प्राप्य यजनाय तु दीक्षितः ॥ ३ ॥
सर्वबीजपशोः काल आगते तु बृ-
हस्पतिः। विष्टमानायितामत्र पश्वर्थ-
मिति भाषत ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा
देवताः सर्वा इदमूचुर्द्विजोत्तमम्।
बृहस्पतिं मांसगृध्राः पृथक्पृथगिदं
पुनः ॥ ५ ॥]अजेन यष्टव्यमिति
प्राहुर्देवा द्विजोत्तमान्। स च

छागोऽप्यजो ज्ञेयोनान्यः पशुरिति स्थितिः ॥ ६ ॥

म. भा. शां ३४५

"यह कर्म भूमि है और स्वर्ग भोगके लिये ही है । इसलिये इन्द्र भूमिपर आकर यज्ञकर्म करनेके लिये दीक्षित बना। सवनीय पशुका समय प्राप्त होने पर बृहस्पतिने कहा कि "पशुके लिये आटा लाओ । " यह बृहस्पतिका भाषण सुनकर (मांसगृध्राः) मांसभक्षण के लालची देव बृहस्पतिसे पुनः पुनः बोलने लगे कि बकरे के मांस से हवन करना चाहिये ।"

यह देवोंका भाषण श्रवण करके ऋषि बोलने लगे कि —

ऋषय ऊचुः ।

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः। अजसंज्ञानि बीजानि च्छागं नो हन्तुमर्हथ ॥ ४ ॥ नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः। इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येत वै पशुः ॥ ५ ॥

म. भारत शां. अ. ३३७

"यज्ञों में बीजोंसे अर्थात् धान्यसे हवन करना चाहिये यह वेदकी श्रुति है। अज नामके बीज हैं इसलिये बकरा मारना योग्य नहीं है। हे देवो ! पशुमारना सज्जनोंका धर्म नहीं है । यह श्रेष्ठ कृतयुग है इस समय यज्ञमें पशु कैसा मारा जायगा?"

इस रीतिसे देवों और ऋषियोंका विवाद चलता रहा। तत्पश्चात् सम्राट् उपरिचर वसु महाराज के सभापतित्वमें शास्त्रार्थ होनेका निश्चय हुआ । देवों और ऋषियोंने मिल कर उक्त सम्राट् को ही अपना अध्यक्ष चुनलिया और उसके सन्मुख अपना विवाद रखा —

भो राजन्केन यष्टव्यमजेनाहो स्विदौषधैः । एतन्नःसंशयं छिन्धि प्रमाणं नो भवान्मतः ॥ ११ ॥ स तान्कृताञ्जलिर्भूत्वा परिपप्रच्छ वै वसुः। कस्य वै को मतः पक्षो ब्रूत सत्यं द्विजोत्तमाः ।१२

म. भारत शां. अ. ३७

" हे राजन् ! बकरेके मांस का हवन होना चहिये, या औषधियोंका हवन करना चाहिये, यह विवाद चल रहा है, इसका फैसला आप कीजिये । आपही हमारे प्रमाण हैं । वह राजा हाथ जोडकर उनसे पूछने लगा कि किसका पक्ष क्या है वह सत्य सत्य मुझे कहिये।"

यहां पाठक देख सकते हैं, राजाने जो यह पूछा उसमें उसका विशेष हेतु था। ऋषि लोग और देव इन में विवाद था । इसलिये प्रबल पक्षके साथ अपनी संमति देनेका विचार करके वसुराजाने उक्त प्रश्न किया था । ' सत्यपक्ष यह है' इतनाही कहना होता, तो वसुराजाको उक्त प्रश्न पूछनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत न होती । परंतु

उसके मनमें विशिष्ट पक्षकी और झुकनेकी कल्पना आगई थी ।

यदि किसी समय आजकल कोई विवाद उत्पन्न हो और वह विवाद एक ओर पंडित लोग हो और दूसरी ओर सरदार राजे महाराजे हों, तो अध्यक्ष की जो अवस्था हो सकती है वही अवस्था उपरिचर वसुकी होगई थी। पंडितोंका पक्ष लेनेसे कोई लाभ नहीं और सरदारों और राजामहाराजोंका पक्ष लेनेमे बहुत लाभ हो सकता है , यह भाव जब सभाध्यक्षके मनमें किसी कारण उत्पन्न हो जाय, तब उसका निर्णय धर्म सभाध्यक्ष के योग्य नहीं हो सकता । यही अवस्था वसुराजा की हो गई । वसुराजाका उक्त प्रश्न श्रवण करके ऋषिलोग अपने सरल भावसे कहने लगे-

धान्यैर्यष्टव्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिप । देवानां तु पशुः पक्षो मतो राजन्वदस्व नः ॥ १३ ॥

म. भा . शांति. ३३७

"ऋषि बोले कि — धान्य हवन करनेका पक्ष हमारा है और पशु हवन का पक्ष देवों का है । इस विषयमें आप निर्णय दीजिये ।"

दोनोंका पक्ष विदित होते ही वसुराजा ने उत्तर दिया —

सभापतिका पक्षपात।

देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात् । छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा ॥ १४ ॥

म. भा. शांति ३३७

" देवोंका पक्ष जानकर वसुराजाने पक्षपात से बकरे के मांससे हवन करना चाहिये ऐसा भाषण किया । "

इस पक्षपातका परिणाम उपरिचर वसुराजाको बहुत बुरी रीतिसे भोगना पडा, देखिये —

कुपितास्ते ततः सर्वे मुनयः सूर्यवर्चसः । ऊचुर्वसुं विमानस्थं देवपक्षार्थवादिनम् ॥ १५ ॥ सुरपक्षो गृहीतस्ते यस्मात्तस्माद्दिवः पत ॥

म. भारत . शांति ३३७

" सब मुनि क्रोधित हुए और बोले की हे राजन् । तूने पक्षपातसे देवोंके पक्षका समर्थन किया है इसलिये तेरा अधः पात होगा । "

उस दिनसे वसुराजा पतित होगया और उसकी कोई इज्जत नहीं रही । केवल मांस यज्ञका पक्षपात करनेसे इस प्रकार एक बडे सम्राट् का अधःपात हो गया है । यह देखकर अब कोई भी पशुयाग का समर्थन न करे ।

निर्मांस यज्ञका फल ।

अब निर्मांस यज्ञ करनेका फल देखिये कैसा होता है । यह निर्मांस यज्ञ उसी उपरिचर वसुराजानेही किया था । इसका वृत्तांत यह है –

एभिः समन्वितो राजन्गुणैर्विद्वान्बृहस्पतिः ॥२॥ तस्य शिष्यो बभूवाग्र्यो राजोपरिचरो वसुः । अधीतवांस्तदा शास्त्रं सम्यक्चित्रशिखंडिजम् ॥ ३ ॥ स राजा भावितः पूर्वं दैवेन विधिना वसुः। पालयामास पृथिवीं दिवमाखंडलो यथा ॥ ४ ॥ तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः । बृहस्पतिरुपाध्यायस्तत्र होता बभूव ह ॥५॥ प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्याश्चाभवंस्त्रयः । एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ॥६॥ धनुषाख्यो ऽथ रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू । ऋषिर्मेधातिथिश्चैव तांड्यश्चैव महान् ऋषिः ॥ ७ ॥ ऋषिः शांतिर्महाभागस्तथा देवशिराश्च यः । ऋषिश्रेष्ठश्च कपिलः शालिहोत्रपिता-स्मृतः ॥८॥ आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च वैशंपायनपूर्वजः ॥ कण्वोऽथ देवहोत्रश्च एते षोडश कीर्तिताः ॥९॥ संभृताः सर्वसंभारास्तस्मिन्राजन्महाक्रतौ । न तत्र पशुघातोऽभूत् स राजैवास्थितो ऽभवत् ॥१०॥ अहिंस्रः शुचिरक्षुद्रो निराशीः कर्मसंस्तुत ।आरण्यकपदोद्भूता भागास्तत्रोपकल्पिताः ॥११॥ प्रीतस्ततोऽस्य भगवान् देवदेवः पुरातनः । साक्षात्तं दर्शयामास सोऽदृश्यो ऽन्येन केनचित् ॥१२॥

म. भारत. शांति. अ. ३३६

"गुणवान् विद्वान बृहस्पतिका शिष्य उपरिचर वसुराजा था । उसने बृहस्पतिसे नाना शास्त्रोंका अध्ययन किया । वह इंद्रके समान राष्ट्रका पालन करता रहा। उस राजाने बडा अश्वमेध किया । इस यज्ञमें बृहस्पति उपाध्याय होता बना था। प्रजापतिके पुत्र सदस्य बने थे । एकत, द्वित, त्रित, धनुष, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, तांड्य, शांति, देवशिरा, कपिल (शालिहोत्र पिता), आद्य कठ, तैत्तिरी (वैशंपायन पूर्वज), कण्व, देवहोत्र, ये सोलह ऋत्विज थे । सब यज्ञ संभार संगृहित होनेके बाद वह यज्ञ हुआ, परंतु उसमें पशुघात नहीं हुआ । वह यज्ञ अहिंसामय, शुद्ध , और विशेष प्रशंसनीय हुआ । और इस यज्ञसे पुरातन देवोंका देव संतुष्ट हुआ । "

यह निर्मांस यज्ञका फल है । इसी यज्ञसे वसुराजाकी उन्नति और उसका अभ्युदय हुआ । निर्मांसयज्ञका यह फल देखिये । परंतु जब उसने देवोंका पक्षपात करके समांस यज्ञकेलिये अपनी संमति दी, तब उसका अधःपात होगया!! इससे सिद्ध है कि निर्मांस औषधियज्ञ ही श्रेष्ठ है और समांस यज्ञ अधार्मिक अत एव अधःपात करनेवाला और सर्वतोपरि गिरानेवाला है ।

अधार्मिक प्रवृत्तिसे समांस यज्ञ शुरू हुआ इस विषयमें महाभारतमें ही एक प्रमाण है वह यहां देखने योग्य है —

अधार्मिक वृत्तिसे समांस यज्ञ ।

इदं कृतयुगं नाम कालः श्रेष्ठः
प्रवर्तितः । अहिंस्या यज्ञपशवो
युगेऽस्मिन्न तदन्यथा ॥ ८२ ॥
चतुष्पात्सकलो धर्मो भविष्यत्यत्र
वै सुराः । ततस्त्रेता युगं नाम
त्रयी यत्र भविष्यति ॥ ८३ ॥
प्रोक्षिता यज्ञ पशवो वधं प्राप्स्यन्ति
वै मखे ॥ यत्र पादश्चतुर्थो वै
धर्मस्य न भविष्यति ॥ ८४ ॥

म. भा. शांति अ. ३४०

"यह कृत युग है, यह श्रेष्ठ काल है। इस युगमें यज्ञके पशु अहिंस्य अर्थात् हिंसा करनेके लिये अयोग्य हैं। क्यों कि इस युगमें चारों कला ओं से पूर्ण-धर्म होता है। इसके पश्चात् त्रेता युग होगा, उसमें त्रयी विद्या होगी और यज्ञ-पशु प्रोक्षित हो कर मारे जांयगे क्यों कि उस युगमे धर्मका एक भाग रहेगा नहीं।"

देखिये यज्ञमें पशुहिंसा तब शुरू हुई कि जब धर्मका एक भाग लुप्त हुआ। जिस समय तक पूर्णधर्म इस भूमंडल पर था तबतक वैदिक यज्ञ तो होते ही थे, परंतु उनमें औषधियोंका ही हवन होता था, और पशुवध नहीं होता था। जिस समय पूर्ण धर्म भावना रही नहीं कुछ धर्म रहा और कुछ अधर्म की कल्पनाएं बीचमें आगई तब यज्ञमें पशुवध प्रारंभ हुआ। और अधर्म भावनाके बढ जानेके प्रमाण में ही यज्ञमें पशुवध बढता गया। इससे स्पष्ट है कि वास्तविक पूर्ण धार्मिक रीतिके यज्ञमें पशुवध होना ही असंभव है। जिस समय कुछ धर्मकी भावना और कुछ अधार्मिक प्रवृत्ति इनका मिश्रण हो जाय तब ही यज्ञमें पशुवध की संभावना हो सकती है। अतः हम विना संदेह कह सकते हैं अधर्म के साथ ही पशुयज्ञ का संबंध है। धार्मिक यज्ञमें पशुमांस का हवन होना असंभव है।

यहां कई कहेंगे कि कृत और त्रेता छोडकर यह तो कलियुग है इस लिये इसमें पशुयाग के लिये क्या दोष है? युगानुसार अधर्मवृद्धिका प्रमाण देखिये—

युग	धर्मभाग	अधर्मभाग
कृत (सत्य)	४	०
त्रेता	३	१
द्वापार	२	२
कलि	१	३

इस कलियुगमें एक हिस्सा धर्म है और तीन हिस्से अधर्म है। इस लिये यदि त्रेता युगमें यज्ञमें पशुहिंसा हो सकती है तो इस कलियुगमें क्यों नहीं हो सकती?

इस शंकाके उत्तर में निवेदन है कि

बेशक इस समय सत्यधर्म की भावना बहुत कम है और अधर्म की वृत्ति बहुत अधिक है। तथापि हमें अपने सामने कौनसा आदर्श रखना चाहिये ? सत्य-धर्मका आदर्श रखना चाहिये या पूर्ण अधर्मका आदर्श रखना चाहिये ? सब लोग कहेंगे कि आदर्श तो धर्मकाही रखना चाहिये। यदि यह सत्य है तो धार्मिक यज्ञका ही आदर्श यज्ञ कर्ता को अपने सन्मुख रखना चाहिये।

क्षण मात्र मान लिया जाय कि कलियुग में तीन भाग अधर्म और एक भाग धर्म रहा है। इस लिये स्वभावतः मनुष्यकी प्रवृत्ति अधर्मकी ओर अधिक और धर्मकी ओर न्यून होतीही है। यह इसलिये नहीं कहा है कि कलियुग के नाम पर मनुष्य प्रतिदिन अधर्म ही करने लग जांय। परंतु इसलिये कहा है, इस युगमें स्वभावतः अधर्मवृत्ति अधिक होती है अतः प्रत्येक मनुष्य अपने सन्मुख उच्च धर्म का आदर्श रखे और कर्म करते समय प्रतिक्षण अपना आचरण शुद्ध धर्मकी कसौटीसे परीक्षा करके देखे। और जहां अशुद्धिकी संभावना हो वहां सावधानीकेसाथ जहांतक हो सके वहांतक अपने आपको अधर्म से बचावे।

अब प्रकृत विषयके संबंधसे इतनाही यहां कहना पर्याप्त है कि सत्ययुग के शुद्ध धार्मिक आचारके समय पशुमांस हीन ही यज्ञ हुआ करते थे। यही शुद्ध और उच्च धार्मिक यज्ञ है। यही आदर्श यजमानोंको अपने सन्मुख सदा रखना चाहिये। त्रेतायुगसे अधर्म बढ गया और यज्ञमें हिंसा प्रारंभ हुई। परंतु इस हिंसा का संबंध अधर्म के साथ है यह जानकर हर एक मनुष्यको और विशेषतः यजमानको इस अधर्म मूलक हिंसामय यज्ञसे बचनेका यत्न करना चाहिये। और यथाशक्ति प्रयत्न करके निर्मांस यज्ञही करना चाहिये। क्यों कि वही धार्मिक शुद्ध यज्ञ है। इसी विषयमें एक इतिहासिक कथा देखिये। इसी महाभारतमें यह कथा है —

फलमूलोंसे यज्ञ

श्रेष्ठ विदर्भदेशमें एक सत्य नामक ब्राह्मण था। उसने यज्ञ करनेकी इच्छा की। उसके पास श्यामाक, सूर्यपर्णी और सुवर्चला ये तीनही वन्य धान्य और साक यज्ञके लिये थे। उसने —

उपगम्य वने शुद्धिं सर्वभूता ऽ वि-
हिंसया। अपि मूलफलैरिष्टो यज्ञः
स्वर्ग्यः परंतप ॥ ९ ॥

म. भा. शांति. २७२

"वानप्रस्थाश्रममें सबभूतोंकी अहिंसा करनेके कारण सब प्रकार से शुद्धि प्राप्त करके उसने निश्चय किया कि मूल फलों से जो यज्ञ किया जाता है वह भी स्वर्ग की प्राप्ति होने के लिये पर्याप्त है।" ऐसा निश्चय करके उसने उक्त वन्य

वस्तुओंसे ही अपना यज्ञ करना प्रारंभ किया।

इस श्लोक पर टीका करते हुए नीलकंठ चतुर्धर जी लिखते हैं—

यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः। इति श्रुतेरर्थमाहापीति।
(म. भा. शां. २७२)

महाभारतटीका (नीलकंठी)

" मनुष्य जो अन्न भक्षण करता है, वही अन्न उसके देवताओंका होता है।" यह श्रुतिवाक्य है ऐसा टीकाकारने कहा है। यह किस स्थानका वचन है इसका पता हमें अभीतक लगा नहीं है। परंतु किसी ब्राह्मण ग्रंथका यह वचन प्रतीत होता है। इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि जो मनुष्य शाकाहारी हैं उसकी देवताएं शाकभोजी होती हैं और जो मनुष्य मांसभोजी हैं उनकी देवताएं मांसभोजी होती है। इस कथन के सत्यासत्यका विचार न करते हुए ही इस तत्त्वका स्वीकार करनेपर निम्न प्रकार फल निकल आता है—

१ नरमांस भक्षक मनुष्योंकी देवताएं मनुष्य मांस खानेवाली होती है, इस लिये नरमांस भोजी मनुष्य अपनी देवताओं के लिये नरबली देते रहें।

२ घोडा, गाय, बकरा आदि पशुओं का मांस जो मनुष्य खाते हैं उनकी देवताएं भी उक्त मांस खाती हैं, इस लिये मांसखोर मनुष्य अपनी देवताओं के उद्देश्यसे मांस अर्पण करते रहें।

३ जो मनुष्य चावल गेहूं आदि धान्य खाते है, दूध घी दही आदि सेवन करते हैं, उनकी देवताएं येही सात्त्विक पदार्थ खातीं हैं,इसकारण ये शाकभोजी मनुष्य इन्हीं पदार्थोंका हवन तथा अर्पण करें।

प्रस्तुत विवादके प्रसंगमें यहां इतनाही कहना है कि जिस पं. दीक्षित महोदयजीने औंधमें सोमयाग किया वे वंशपरंपरासे केवल शाकभोजी शुद्ध सात्त्विक अन्न खानेवाले ही हैं। उनके बापदादा में किसीने भी कदापि मांसभक्षण किया ही नहीं था। इसलिये इनकी देवताएं निरामिषभोजी ही हैं। अतः इनको समांसयज्ञ करना अत्यंत अनुचित था। यह बात यहां उक्त वचन से ही सिद्ध होगई।

यद्यपि देवताएं इसप्रकार नरमांसादि खातीं हैं ऐसा हम मानते नहीं हैं तथापि दुर्जनतोषन्यायसे उनकी यह बात हमने क्षणमात्र मान भी ली, तो भी उससे उनका मांस यज्ञ सिद्ध नहीं होता है, प्रत्युत निर्मांस यज्ञही सिद्ध होता है। इतना देखनेके पश्चात् हम पूर्वप्राप्त ब्राह्मणकी कथाका वृत्तांत देखते हैं। चूंकी ब्राम्हण वानप्रस्थी, शुद्धाचारी, अहिंसाका पालन करनेवाला था,

इस लिये उन्होने कंदमूल और फलोंसे ही यज्ञ करनेका निश्चय किया ।

उस ब्राह्मणकी स्त्री बडी अहिंसाशील थी और उसका नाम पुष्करधारिणी था । यह स्त्री अत्यंत पतिव्रता थी, जो पति कहता था वह सब श्रद्धापूर्वक करती थी । यह इतनी अहिंसाशील थी कि वस्त्र के लिये मोर के पंख जो गिर जाते थे वही उपयोगमें लाती थी ।

इस ब्राह्मण के आश्रममें एक पर्णाद नामका मृग था, वह इस यज्ञको देख रहा था । उस मृगने एक समय उक्त ब्राह्मणसे कहा कि यह तुम्हारा यज्ञ सांग नहीं है —

> वचोभिरब्रवीत्सत्यं त्वयेदं दुष्कृतं कृतम् । यदि मंत्रांगहीनोऽयं यज्ञो भवति वैकृतः ॥ मां भो प्रक्षिप होत्रे त्वं गच्छ स्वर्गमनिंदितः ॥ १० ॥
>
> म. भा. शांति. २७२

उस मृगने कहा कि " यह तेरा यज्ञ (दुष्कृत) बुरी विधिसे किया हुआ है क्यों कि यह मंत्र और अंगसे हीन है । अतः अपना यज्ञ सांग करनेकी इच्छा तुम्हारी है तो तुम मेरे मांस का हवन करो और अनिंदित होता हुआ स्वर्ग को चला जा "

यह मृग का भाषण श्रवण करके उस सत्यनामक ब्राह्मणने कहा कि—

> न हन्यां सहवासिनम् ॥ ११ ॥
>
> म. भा. शां. अ. २७२

" मैं साथीका हनन नहीं करूंगा । " ब्राह्मण इस रीतिसे हिंसासे दूर रहना चाहता था और मृग उसको अपना वध करानेके लिये उत्साहित करता था । अंतमें—

> मृगमालोक्य हिंसायां स्वर्गलोकं समर्थयत् ॥ १६ ॥ तस्य तेनानुभावेन मृगहिंसात्मना तदा । तपो महत्समुच्छिन्नं तस्माद्धिंसा न यज्ञिया ॥ १८ ॥
>
> म. भा. शांति, २७२

" मृगका हठ देख कर उसने अपने स्वर्गवास के लिये मृगमांस से हवन किया । उस प्रकार मांस हवन का यज्ञ करनेसे उस ब्राह्मण का बहुत ही तप नष्ट हुआ, इस लिये यज्ञमें हिंसा नहीं करनी चाहिये । "

इस ब्राह्मणकी धर्मपत्नी पहिलेसेही ऐसे हिंसाकर्मसे असतुंष्ट थी और पूर्णरीतिसे विरुद्ध थी । अंतमें तात्पर्य यह निकला कि-

> अहिंसा सकलो धर्मो हिंसाधर्मस्तथाऽहितः ।
>
> म. भा. शां. अ. २७२

" अहिंसा ही परिपूर्ण धर्म है और जिसमें हिंसा करनी पडती है वह अहितकारक कर्म है । " यह अध्याय ही यज्ञमें हिंसाका निषेध करनेके लिये महाभारतमें लिखागया है । टीकाकर

नीलकंठ चतुर्धर इस अध्याय की समाप्ति पर निम्नलिखित पंक्तियां लिखते है—

अत्र आख्यायिकातात्पर्यं पशुकार्ये श्यामाकादित्रिकारांश्चरुपुरोडाशा-दीन् कुर्यादिति गम्यते। तथा च गृह्ये " अथ श्वोभूतेष्टकाः पशुनो स्थालीपाकेन वा " इति पशुस्थाने स्थालीपाकोऽपि विधी-यते। एवमन्यत्र पुरोडाशामिक्षा-दीनामपि पशुस्थाने विधानमव-गंतव्यम्। तस्मात्र हिंसायज्ञः श्रेयानिति यज्ञनिंदेत्यध्याय नाम तत्र हिंसायज्ञनिंदेत्यवगंतव्यम्॥

म. भा. शां. अ. २७२

(नीलकंठी टीका)

" इस कथा का तात्पर्य यह है कि यज्ञमें पशुके स्थानपर श्यामाक आदि धान का उपयोग करना चाहिये ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है। गृह्य सूत्रमें भी ' पशुस्थानमें स्थालीपाक ' का प्रयोग करनेको कहा है। अन्यत्र भी पुरोडाश, दही आदि का पशुके स्थानपर उपयोग करना चाहिये। अतः हिंसायज्ञ श्रेय-स्कर नहीं है। इस अध्याय का नाम यज्ञनिंदा है उसका तात्पर्य हिंसायज्ञ की निंदा समझना चाहिये।" इसी टीकाकारने इसी अध्याय के नवम श्लोक की टीकामें निम्न पंक्ति लिखी है—

यथा वा ज्योतिष्टोमे आनुबंध्यायां गोपशोः स्थाने पशुभावे पयस्या-श्वलायनाद्युपदिष्टायां पयस्यायां०।

(म. भा. शां.२७२। ९ नीलकंठी)

" ज्योतिष्टोम में गौ के स्थानपर दही का उपयोग करने को लिखा है।" यह आश्वलायन का कथन है। शतपथ में तो कई स्थानोंमें पशुओं के स्थानपर घृताहुती देनेका विधान पूर्व लेखोंमें बताया ही है। इसका तात्पर्य स्पष्ट यही है कि यज्ञमें पशुमांस हवन की आवश्यकता नहीं है, इतनाही नहीं प्रत्युत समांस यज्ञ करनेसे अवनाति, अधोगति, अधःपात तथा पतन होता है। इस कारण कोई भी वैदिक धर्मानु-यायी कभी समांस यज्ञ न करे तथा समांस यज्ञ यदि किसीने प्रमादसे किया अथवा करनेका प्रारंभ किया तो उसे प्रतिबंध करें और निर्मांस यज्ञका खूब प्रचार करें।

अब निर्मांस यज्ञके संबंधमें श्रीमद्भा-गवत की साक्षी बताकर हम लेखको समाप्त करता है, देखिये भागवतकार क्या कहते हैं—

(१) भो भोः प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाध्वरे। संज्ञापितान् जीव संघान्निर्घृणेन सहस्रशः॥ एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव। संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्यु-त्थितमन्यवः॥

भा० ४।२५।७, ८

(२) तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्तास्ते ऽदयालुना। कुठारैश्छिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत्
भा० ४।२८।२६

"हे राजन्। तेरे यज्ञमें जो सहस्रों पशु तेरी निर्दयतासे मारे गये वे तेरी उस क्रूरताका स्मरण करते हुए क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारोंसे तुझे काटने के लिये बैठे हैं।"

"इस दयाहीनने जो यज्ञमें पशु मारे थे वे ही क्रुद्ध होकर, उसका यह अयोग्य कर्म स्मरण करते हुए, उसको कुल्हाडोंसे छिन्नभिन्न करने लगे।"

ये भागवत के वचन स्पष्ट रीतिसे कह रहे हैं कि पशु यज्ञका परिणाम स्वर्गमें बहुत ही बुरा होता है। यज्ञमें मारे हुए पशु कुल्हाडे लेकर स्वर्गमें बैठे होते हैं, जब यजमान वहां पहुंचता है, तब वे उसे काटते हैं और उसके टुकडे टुकडे करते हैं। पशुयज्ञका कितना भयानक परिणाम यह है, पाठक अवश्य देखें, और सोचें कि यदि इतनी भयंकर अवस्था बनती है तो क्यों पशुयाग किया जाय?

धान्य हवन करके स्वर्गीय सुख प्राप्त करना ही योग्य है। मूर्खतासे पशुयाग का खटाटोप करके अपने आपका ही नाश करवाना किसी भी मनुष्य को योग्य नहीं है।

तात्पर्य पुराणों का भी आशय देखा जाय तो वे ग्रंथ भी पशुयाग का खंडन अनेक प्रकारोंसे और स्पष्ट शब्दोंसे कर रहे हैं। प्रायः किसी भी पुराण का यह तात्पर्य नहीं है कि पशुयाग करना चाहिये। परंतु प्रायः सभी पुराण अपने अपने ढंगसे पशुयाग का खंडन ही कर रहे हैं। यह बात और है कि पुराणों का पशुयाग खंडन का ढंग भिन्न है, परंतु पुराणोंका तात्पर्य पशुयाग खंडन में है इसमें किसीका भी मतभेद होही नहीं सकता।

अतः पशुयाग धर्मबाह्य है और धान्य, पुरोडाश, घी, दूध, समिधा, औषधि आदि का हवन करना धर्मानुकूल है।

यमयमी सूक्त

यम यमी सूक्त पर जो विचार हमने वैदिक धर्मके पूर्व अंकमें प्रकाशित किये थे उसका प्रत्यालोचन पं. चमूपतिजीने "आर्य" में किया है। परंतु उस में कोई नवीनता नहीं है। इस प्रत्यालोचन के प्रत्येक कथन का खंडन प्रथम लेखसेही हो चुका है। अतःकोई विशेष बात सन्मुख आने तक हमारे वेही विचार स्थिर हैं। अधिक लेख लिखकर विस्तार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

"संपादक"

पशुयाग शास्त्रार्थ।

गतमासमें जो शास्त्रार्थ के संबंधमें वृत्त दिया है उससे अधिक कुछभी निश्चित नहीं हुआ है।

स्वाध्यायमंडलमें इस विषयमें खूब आंदोलन चल रहा है। श्रुतिस्मृतिसे लेकर पुराणों तक के संपूर्ण ग्रंथोंका परिशीलन करके एक ग्रंथ निर्माण किया जा रहा है। प्रायः इस मासमें उस ग्रंथका लेखन पूर्ण हो जायगा। और इससे स्पष्ट पता लग जायगा कि प्रायः सभी ग्रंथ यज्ञमें हिंसाका निषेध एक मतसे ही कर रहे हैं।

स्थानस्थान के विद्वानोंके लेख भी आरहे हैं। जिन विद्वानों को अपना लेख इस ग्रंथमें मुद्रित करनेकी इच्छा है, वे अपना लेख हमारे पास आगामी मासके अंत तक भेज दें जिससे हम उन लेखोंको यथायोग्य स्थानमें रख सकेंगे।

यागविषयक प्राचीन शास्त्रार्थ के ग्रंथ भी हमने बहुत संग्रह किये हैं, जिससे प्रतीत होता है कि, पशुयाग निषेध बडाही प्राचीन है। शताब्दियोंके पूर्व सब विद्वान इसका निषेध करते आये हैं।

अब हमारे सन्मुख यह प्रश्न खडा है कि इन सब ग्रंथोंको किस ढंगसे जनताके सन्मुख लावें? क्यों कि इन सब ग्रंथोंका मुद्रण याग विचार करनेकी दृष्टीसे अत्यावश्यक होने पर भी आर्थिक बल के अभाव के कारण अशक्य है। विशेषकर वैष्णव सम्प्रदाय वालों ने पशुयाग निषेधपर बहुत ग्रंथ निर्माण किये हैं। जिन महानुभावों के पास वैष्णवों के अथवा अन्योंके यागहिंसा निषेध विषय-पर ग्रंथ हों, वे सज्जन हमारेपास उन ग्रंथों को भेज दें। उसका लेखन करनेके पश्चात् हम उनका पुस्तक वापस करेंगे तथा मुद्रण करनेके पश्चात् उनको मुद्रित पुस्तक भी भेजदेंगे।

शास्त्रार्थ पुस्तक के मुद्रण के लिये जो सहायता इस ता. २८।६।२५ तक आगई है वह निम्न स्थानमें दी है–

म. गणपतराव गोरे	१०)
म. मदन०जी	११)
म. रामचरित्रजी	१)
म. जगजीवनजी	१०)
म. संतरामजी	११)
म. वनमालीजी	१०)
म. हर नारायणजी	२)

श्री. मंत्री आर्यसमाज दरे सलाम—

म. सालिग्रामशर्माजी	५ शिलिंग
म. धेला भाई जी	५ "
" बिशनदासजी	५ "
" कानजी जयराम	५ "
" सांडस ई. आर.	५ "
" गोविंदजी	१० "
" मोहनलालजी	५ "
" सुंदरजी	५ "
" माधोजी	२ "
" पांड्याजी	२ "
" बसंतरामजी	१ "
	५० शि. के रु. ३३=)

श्री. मंत्री आर्य समाज चंबा	११)
म. छगनभाईजी.	१)
" चुनीलालजी	५)
" नटवरलालजी	५)
" हितमलालजी	१०)
" बिहारीलालजी	१॥)
श्रीमती दुर्गावती देवीजी	१)
बा. शिवप्रसादजी	५॥)
" लालचंद्रजी	१०)
म. मदन०जी	४)
कुँ. चांदमलजी	२)
से. मगनलालजी	२)
" जीतमलजी	१)
" केशरीलालजी	१)
" मथुरालालजी	१)
" गोकुलदासजी	१)
गुप्तदान	१)
पं. टीकारामजी	२)

श्री. मंत्री आर्यसमाज झांसी	१५)
म. भवानीरामजी	१)
" ईश्वरीप्रसादजी	१)
" सोमेश्वरजी	१)
" बनवारीलालजी	१)
" हरशिवप्रसादजी	१)
मुं. रामलाल जी	११)
" जीवारामजी	२)
बा. लक्ष्मी नारायणजी	२)
" कृष्ण कुमारजी	१)
पं. शिवशंकरजी	१)
चौबे सुंदर लालजी	१)
श्रीमंत्री आर्यसमाज जम्मू	२५)
म. देसराजजी	१॥)
श्री. स्वा. शिवानंदजी	५)
म. नटवरलालजी	५)
शा. परसोत्तमजी	३)
" सांकलचंदजी	२)
म. बलदेवजी	५)
" आदित्यरामजी	५)
से. चीमनलालजी	५)
म. भगुभाईजी	१)
म. मोतीरामजी	१)
पं. धीरजलालजी	१)
ला. शिवदयालजी	२)
म. गोपाल सावंत	२)
" सीताराम लक्ष्मण	१)
" राजाराम लक्ष्मण	१)
" बापूजी शिवाजी	१)
डा. शिवदयालजी	१०)
बा. टिकेत नारायणजी	५)
" हेमरामजजी	१)
पं. गोपाललालजी	१)
श्री. धुली लालजी	॥)
ब्र. ओंप्रकाशजी	२॥)
" पुरुषोत्तम प्रकाशजी	२॥)
" चमन प्रकाशजी	२)
योग	२८२ ||।=)
पूर्व मासतक प्रकाशित	५९५)
सर्वयोग	८७७ |||=)

पाठक इस बातका विचार करें कि जब और इतनी सहायता प्राप्त होगी तभी यज्ञ-विषयक पुस्तक प्रेसमें मुद्रणार्थ भेजा जा सकता है। इसलिये इस कार्य के लिये अपना दान भेजनेकी शीघ्रता करें। शास्त्रार्थका भाद्रपद मास पास आ रहा है।

ग्रंथ परिचय।

१ निरुक्त भाष्य। [लेखक तथा प्रकाशक–श्री पं०. चंद्रमणिजी विद्यालंकार, पाली रत्न, वेदोपाध्याय गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगडी. जि. बिजनोर]

श्री० पं० चंद्रमणि जी निरुक्तका परिशीलन आज कई वर्षोंसे कर रहे हैं।

निरुक्त शास्त्र का विशेष रीतिसे अध्ययन करना उनके लिये विशेष हृदयंगम इस लिये हुआ कि उनको संस्कृत हिंदी अंग्रेजी के अतिरिक्त पालि आदि प्राकृत भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान है। प्राकृत आदि अनेक भाषाओंके ज्ञानके विना निरुक्तका अध्ययन उतना हृदयंगम नहीं हो सकता यह बात निरुक्तके साथ परिचय रखने वाले स्वयं जान सकते हैं। इसलिये पंडितजी की योग्यता निरुक्त का अध्ययन करने के लिये जैसी चाहिए वैसी है और इसी लिये वे ऐसा सुयोग्य ग्रंथ बना सके हैं। केवल हिंदी जाननेवाले भी इस ग्रंथसे अत्यंत लाभ प्राप्तकर सकते हैं इतना सुगम यह ग्रंथ हुआ है। हरएक वैदिक ज्ञानका प्रेमी इस ग्रंथसे अवश्य प्रेम करेगा।

वैदिक जीवन।

(लेखक-श्री० पं. विश्वनाथजी विद्यालंकार। प्रकाशक — चौ० श्रीचन्द्रजी, मॅनेजर महेशबुकडिपो, घसेटी बाजार, अजमेर मू. ।॥)

इस पुस्तकमें स्तुतिप्रार्थनोपासना, वैयक्तिक जीवनकी उन्नति, कर्मयोग ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, दान, अतिथियज्ञ, राष्ट्रीयजीवन, अंतर्राष्ट्रीय विचार, ईश्वरप्रेम आदि उपयोगी और आवश्यक अस्सीसेभी अधिक विषयोंका वेदमंत्रोंके प्रमाण देकर दस प्रकरणोंमें उत्तम विचार किया है। हरएक प्रकरण अत्यंत बोधप्रद और वैदिक जीवन व्यतीत करनेकी इच्छा करनेवालेके लिये अतिलाभदायी है और मूल्यभी अत्यल्प है। इसलिये जिज्ञासु पाठक इसका पाठ आवश्य करें।

(३) धार्मिक लक्षण वर्णन।

(ले० श्री. पं. कृष्णचंद्रसूरी; २९ जकरियास्ट्री, कलकत्ता। मू०- ।॥)

इस पुस्तकमें ३६ श्लोकोंमें धार्मिकके लक्षणोंका वर्णन है। श्लोक और टीका संस्कृत में है और उसका सरल भाषानुवाद भी है।

(४) तुलनात्मक विचार— (ले०- श्री०पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालंकार प्रकाशक- म० राजपालजी आर्य पुस्तकालय, अनार्कली, लाहौर। मू. ॥)

इस पुस्तकमें श्री० स्वामिजीके विचारोंके साथ श्री० मध्वाचार्यजीके विचारोंकी तुलना की गई है और दर्शाया है कि दोनों आचार्योंके विचारोंमें कितनी समानता है। इस पुस्तकसे स्पष्ट पता लगता है कि यह समानता आश्चर्यजनक है। और इतनी शताब्दियों के पूर्व समाजके सिद्धान्तोंकेही विचार श्रीमध्वाचार्यजीने जनताके सन्मुख रखे थे। निःसंदेह पं० धर्मदेवजीका यह पुस्तक हरएक आर्यको अवश्य पढनीय और मननीय है।

(५) तार दर्पण—तारद्वारा संदेश भेजने की विधि इस पुस्तकमें दी है।(लेखक और प्रकाशक —श्री० म० रामस्वरूप, बीसाऊ (जयपूर मू० ।=)

यवन जाति की शुद्धि ।

(श्री० कुँअर चादकरण शाग्दा)

डाक्टर भाडारकर ने सम्राट् अशोक के शिलालेखों (Rock Edict XIII Ep Ind Vol IL pp 463 464)में से यह लिखा है:-

" एसे च मुखमुते विजये देवानंप्रियस यो धर्मविजयो ।

सो च पुन लधो देवानंप्रियस इह च सर्वेसु च अंतेसु आ छसुपि योजनसतेसु यत्र अंतियोंको नाम योनराजा पर च तेन अंति- योकेन चतुरो राजानो तुरमयि नाम आति. किनि नाम मक नाम अलिकसुंदरो नाम।"

प्राकृत भाषा के उपरोक्त लेख से पाया जाता है कि ग्रीक लोगों को यवन कहते थे और इसमें ५ यवन राजाओं के नाम " अंतियोक " " तुरमाय " " मक " " अलिकसुन्दर " " अंतिकिनि " आये हैं। ये ही शुद्ध हुये हिन्दू राजा अंग्रेजी में Antiochos Soter King of Syria Ptolemy Phial delphos, king of Egypt, Antigonos Gontos, king of mecedonia, Alxandu, king of Ephisus कहते हैं। उपरोक्त शिलेख। के आधार पर उन्होंने यह सिद्ध करने का सफल प्रयत्न किया है कि ग्रीक लोगो का पुराना नाम यवन था। इन लोगों को हिन्दूधर्म में दीक्षित कर पुन हिन्दू-धर्म में मिला लिया गया था। पंजाब और काबुल में राज्य करने वाला राजा जिसका नाम " मिलिन्द मीनीएन्डर" menander था यह ईसा से११० वर्ष पूर्व बडा प्रतापी राजा हुआ था। और यवन जाति का एक स्तम्भ था। पाली भाषा में लिखे शिलालेखोंसे यह सिद्ध होता है कि उसने बौद्ध मत को भी ग्रहण किया था। यवन राज " मीनीएन्डर " को शुद्ध कर कर उसका संस्कृत नाम " मिलिन्द " रक्खा गया उसने महाभाष्य के रचयिता " पातंजलि " के समय में " साकेत " जिसको "अवध" कहते है और "मध्यमिका" (मेवाड) नामक स्थान यवनोंद्वारा घेरे। महर्षि "पतंजलि" ने महाभाष्य में उनकी मिसाल निम्न प्रकार से दी हैं-

" अरुणयवनो मध्यामिकाम "

" अरुणायवनो केतम् "

इसी राजा "मिलिन्द" के सिक्के "बरोच" (गुजरात) में प्रचलित थे। और काठियावाड़ में अबतक मिलते हैं। उनके एक ओर तो ग्रीक भाषा में (Basileus Suthros Menandros) और दूसरी ओर प्राकृत में " महाराजस आदर्श मीनमदशे" लिखा हुआ है। " मिलिन्दपनहो " नामक प्राकृत भाषा की पुस्तक में " मिलिन्द यवन ने किस प्रकार बुद्ध धर्म स्वीकार किया इसका विस्तृत वर्णन है इसका वृत्तान्त" Sacred Books of the east " में भी मिलता है। जिस में लिखा है कि बौद्ध गुरु " नागसेन " से शास्त्रार्थ कर "मिलिन्द" राजाने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। बौद्ध होने के बाद इसके सिक्कों पर "धर्मचक्र" भी रहता था।

न केवल इतना ही प्रत्युत वाली शिलालेखों से यह भी सिद्ध होता है कि यवनोंने " सिंह ", " धैर्य " और " धर्म " शब्दान्त नाम रखकर हिन्दू-धर्म को स्वीकार किया था। एक शिलालेख से यह भी प्रमाणित होता है कि तुरकण का पुत्र हरकरण जिसका पाहिला नाम यदाशोक था, वह ब्राह्मण और साधुओं को बहुत दान दिया करता था। इसलिये ब्राह्मणो ने उसे इस साधुभक्ति तथा ब्राह्मण प्रेम के उपलक्ष्य में हिन्दू बना लिया था। " चिट " और " चन्दान" नामक यवनों के जीवनचरित्र से यह सिद्ध होता है कि इनका संस्कृत नाम "चित्र" और "चन्द्र" रक्खा गया था। और आर्यपुरुषों के साथ इनका खानपान समान पाया जाता है। जुन्नर के एक शिलालेख से यह बात और भी पुष्ट होजाती है। नासिक की गुफाओं में एक शिलालेख मिला है कि " सिधं ओतरांहस दतामिति यकस योणाकस धम्मदेव पुसत इंद्राग्निदतस धम्मात्मना: " इसका अर्थ यह है " दत्तामित्र का रहने वाला धार्मिक धर्मदेव के पुत्र इन्द्राग्निदत्त ने यह मंदिर दिया " इस लेख से यह प्रकट होता है कि उत्तर से आये हुए यवन पिता पुत्रों दो धर्मदेव और इन्द्राग्निदत्त नाम रख कर आर्य बना लिया गया था। नासिक में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जिसमें लिखा है " शकाग्निवर्मणः दुहिता गणपकस्य रेभिलस्य भार्या गणपकस्य विश्ववर्मस्य माता शकनिकया उपासिकया विष्णुदत्तया गिलनभेषजार्थ अक्षयनीवी प्रयुक्ता " इस लेख में एक रानी की तरफ से धर्मार्थ फण्ड स्थापित करनेका वर्णन है। यह रानी शकजाति की थी। शकजाति से शुद्ध होने के बाद इसका नाम विष्णुदत्ता रक्खा गया। और यह बौद्ध उपासिका बनगई। इसके पति का नाम गणपक था और इसके पिता का नाम अग्निवर्मन था।

इसके पिता के नाम के साथ वर्मा विशेषण लगा हुआ है, जोकि क्षत्रियत्व का परिचायक है। अतः प्रतीत होता है कि जिस समय यह लिखा गया होगा। उस समयसे पूर्व ही विदेशी शक जाति हिन्दुओं

मनुस्मृति और महाभारत में म्लेच्छ लिखा है, आर्य्यजाति में पूर्णरूप से मिल चुकी थी। ये लोग भारत में पश्चिम की तरफ से आये थे और राजा विक्रमादित्य के १५० वर्ष बाद तक उन्होंने मालवा, गुजरात पर शासन किया था। इस जाति का सब से प्रसिद्ध राजा। शालिवाहन, जिसका कि संवत चलता है, हुआ है, इसके वंशज ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें अब तक पाये जाते हैं। अवध के बहुतसे वंश क्षत्रिय ताल्लुकदार इन्हीं महाराज शालिवाहन के वंशज हैं। और अवध का बहुतसा हिस्सा "वैशवाए" नाम से प्रसिद्ध है वहां अधिकांशतः यही वैश क्षत्रिय पाये जाते हैं और इसी वंश की बड़ी बड़ी रियासतें अब तक मौजूद है, जैसे "कसमांडा खजूर गांव" "कुर्री-सुदौली" "रहवां" "नरेन्द्रपुर" "चन्दार" आदि। महाराज हर्ष जो कि "वेश" वंश में से थे वेरी भारत के। प्रसिद्ध सम्राट् हुये, देखो बाणभट्ट रचित "हर्षचरित"।

क्षत्रप वंश का क्षत्रिय जाति में प्रवेश।

प्राचीन शिलालेखों में क्षत्रपवंशीय कई राजाओं का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु क्षत्रप शब्द का किसी संस्कृत कोष या अन्य पुस्तक में पता नहीं चलता। अतः डाक्टर "भांडारकर" ने यह सिद्ध किया है, कि यह शब्द फारसी भाषा के "क्षत्रपावन" शब्द का, जिसका अर्थ राजप्रतिनिधि है, रूपान्तर है। अंग्रेजी में इसी शब्द का बिगड़ कर (Satrap) होगया है। एक नासिक के शिलालेख में इस वंश के राजा "दिनीक," "नाहापान" आदि का और "नहपान" की लड़की "संघमित्रा" का एक आर्य राजा ऋषभदत्त या उशवदत्त जो राजा "दीनीक" का पुत्र था उसके साथ विवाह का वर्णन आता है, यह नासिक का शिलालेख इस प्रकार है:—

"सिद्धं राज्ञः क्षहरातस्य क्षत्रपस्य नहपानस्य जामात्रा दीनीकपुत्रेण उषवदातेन इत्यादि"

इस वंश के राजाओं का राज्य नासिक और बाद में उज्जयिनी में २०० वर्ष तक रहा। शिलालेखों और सिक्कों में "चष्टन" नाम मिलता है, डाक्टर साहब ने अनुमान किया है कि यह "चष्टन" ही तियस्थनीज नाम से प्रसिद्ध था। इसके पुत्र का हिंदू नाम "जयदमन" और पौत्र का "रुद्रदमन" था, इसके कुछ काल के बाद इनके नाम रुद्रसिंह आदि होगये थे, इन नामों के देखने और ऊपर लिखित शिलालेखों के विचार करने से यही सिद्ध होता है कि "क्षत्रप" लोग भी विदेशों से आकर भारत मे बसे थे और शनैः शनैःहिन्दू आचार विचारों को ग्रहण करने से हिन्दू जाति में मिला लिये गये। इन शुद्ध हुये क्षत्रियों का राज्य ३८८ सन् तक रहा। रुद्रदमन के विषय मे जूनागढ में निम्नलिखित शिलालेख मिला है "शब्दार्थ गान्धर्व — न्यायाद्यानां विज्ञान-प्रयोगावाप्तविपुलकीर्तिना" अर्थात रुद्रदमन व्याकरण, संगीत, न्याय आदि का प्रकाण्ड

पंडित था और उसकी बडी कीर्ति थी ।

कान्हेडी गुफा के शिलालेख "वासिष्ठी-पुत्रस्य" आदि से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इस शुद्ध हुये " रुद्रदमन" की पुत्री से वासिष्ठ पुत्र " श्रीसातकर्णी" का विवाह हुआ था अर्थात् वे शुद्ध किये जाकर उनका उच्च वंशों के राजाओं के साथ संबंध भी होगया। नासिक की गुफा के शिलालेख में लिखा है कि इसी शक जाति के " दसपुरा" के रहने वाले शुद्ध हुये विष्णुदत्तके लडके "वृद्धीक " ने वहां दो कुंड बनवाये। इससे ज्ञात होता है कि न केवल राजा महाराजा वरन् मामूली हैसियत के शक जाति के आदमी भी शुद्ध कर लिये जाते थे। यह यवन शुद्ध होने के बाद बडे बडे मठों बौद्ध चैत्यों और स्तूपों में पुष्कल दान देते थे। पूना के समीप की कारली गुफा में लिखे हुये शिलालेखों से यह सिद्ध होता है–

" धेनुकाकटा यवन स सिह
धयानथम्मो दानं "

अर्थात धेनुकाकट से आये हुये यवन ने शुद्ध होकर हिंदू नाम " सिंहध्व " रक्खा। उसने यहां भेंट चढाई।

" धेनुकाकटा धमधवनस।"

अर्थात् धेनुकाकट से आये हुये यवन ने शुद्ध होकर अपना हिन्दू नाम धम्म रक्खा और यहाँ भेंट चढाई।

जुन्नार के निम्नलिखित शिलालेखोंसेभी यही सिद्ध होता है:–

'यवनस इरिलस गतान दवधम बे पोढियो'

अर्थात् ईरीला नामक यवन को हिंदू बनाया गया और उसने मन्दिर के लिये दो कुंड बनवा दिये।

आभीरजाति का हिंदू होना ।

वर्तमान " अहीर " कहलानेवाले विदेश से भारत में आये और " आभीरवटक " नामक स्थान में, जो संयुक्तप्रान्त में " अहरौरा " और झांसी जिले में "अहीर-वार " नाम से प्रसिद्ध है, आकर बसे। विष्णुपुराण महाभारत तक में इनको म्लेच्छ मानते रहे परन्तु हिंदूजाति ने इनको शुद्ध कर अपने में मिला लिया और सन् १८० में इनके शुद्ध हिन्दू नाम रक्खे जाने लगे हैं जैसे कि " रुद्रमूर्ति " अभीर सेनापति था। और यह राज्य करने लगे और राजा होने के बाद इनके नाम " माधरीपुत्र " " ईश्वरसेन " " शिवदत्त " इत्यादि हुये और राजपूतों में मिलगये और अबतक इनको यादव राजपूत होने का अभिमान है।

तुरुष्क जाति का हिन्दू होना।

भारत के उत्तर से एक जाति, जिसका नाम तुरुष्क था भारतवर्ष में आई। जिस देश में यह जाति रहती थी, उसका नाम राजतरङ्गिणी में तुरुष्क तथा कुषाण लिखा है, यह कुषण राजा के वंशज थे, और कुषणवंशी कहलाये। इस वंश के हिम-काड्स (हिमवदफिसस) नामक एक राजा ने शैवमत को स्वीकृत कर हिंदू जाति में प्रवेश किया था। इसके विशेषणोंमें " माहेश्वर " शब्द मिलता है जिसका

अर्थ शैव है । इस के सिक्कों पर एक तरफ तुर्की टोपी दूसरी तरफ त्रिशूलधारी शिव और नन्दी बैल की तस्वीर है । इसी वंश में प्रसिद्ध बौद्ध राजा " कनिष्क " " हुविष्क " और " वसुदेव " हुये जिनके सिक्कोंपर बौद्ध भगवान के चित्र मिलते है ये सब हिन्दूजाति में मिलगये ।

हूण जाति का आर्य होना ।

ईसाकी ५ वीं शताब्दी में हूण जाति ने टीडीदल की तरह भारत मे प्रवेश किया, और कुछ समय के उपरान्त काश्मीर से लेकर मालवा आदि प्रदेशों तक इस जाति का अधिकार हो गया था । इसका विस्तृत विवरण राजतरंगिणी मे लिखा है । हर्षवर्धन " शिलादित्य " ने इन्हे परास्त किया । बहुत काल तक भारत में रहने के कारण और हिन्दूधर्मानुकूल कर्मों के करने से ये क्षत्रिय जाति में पूर्णरूप से मिल गये थे । छत्तीसगढ़ चेदी के राजा कर्णदेव ने एक हूण कन्या " अहिल्या देवी " से विवाह किया था । और पंवार राजपूतों की यह हूण एक शाखा अब तक मानी जाती है ।

शाकद्वीपी मग जाति का ब्राह्मण जाति में प्रवेश ॥

निम्नलिखित श्लोक से सिध्द होता है कि मगों को विदेश से लाकर ब्राह्मण बनाया ।

देवो जीयात् त्रिलोकेमणिरयमरुणो यन्निवासेन पुण्यः, शाकद्वीपःस दुग्धाम्बुनिधिवलयितो यत्र विप्रा मगाख्याः। वंशस्तत्र द्विजानां भ्रमिलिखिततनान्भास्वतः स्वाङ्गमुक्तः, शाम्बो यानानिनाय स्वयमिह महितास्ते जगत्यां जयन्ति ॥

एशिया तथा उसके आस पास के प्रदेशों में एक जाति मग नाम की, जिस को अब मगी कहते है, आबाद थी । यह लोग पहले पहल आकर बंगाल राजपूताना आदि में बसे थे । उस समय ब्राह्मण लोग पुजारी बनना गर्हित कर्म समझते थे। क्योंकि "देवचर्य्यागते-र्द्रव्यैः क्रिया ब्राह्मी न विद्यते" अर्थात देवपूजा में प्राप्त द्रव्य द्वारा ब्रह्मकर्म नहीं होता। अतः श्रीकृष्ण के पुत्र "शाम्बराज" ने अपने मन्दिर की पूजा के लिये (जो कि उसने चनाब नदी के तट पर बनवाया था) इन मगों को पुजारी बना दिया। तब से शनैः शनैः ये मग लोग उन्नति करते करते ब्राह्मण जाति में मिल गये, और देवपूजा में इनका इतना अधिकार बढा कि "वराहमिहिर" के समय से सूर्य्य देवता की स्थापना का अधिकार केवल मग ब्राह्मणोंका ही रहा। भविष्यपुराण मे इनके विषय में लिखा है कि ये पहिले गले में डोरी डाले रहा करते थे, परन्तु ब्राह्मण पदवी प्राप्त करने पर यज्ञोपवीत धारण करने लगे। शिलालेखोंसे यह सिद्ध होता है कि ये लोग पहले "शाकद्वीप" में रहा करते थे। इनका विस्तृत विवरण स्कन्द-पुराण में मिलता है और शाम्ब ने जब भोज-वंशी यादवों की लडकियां इनको ब्याह दीं तो उस दिन से उनकी सन्तान "भोजक" कह-

लाई, ये लोग जादू टोना बहुत करते थे इस वास्ते इनके साहित्य को "मैगिक" साहित्य कहते थे और अंग्रेजी का Magic शब्द इसी "मैगिक" का अपभ्रंश है। यही लोग मारवाड में सेवक कहाते हैं। यह "मिहिर" गोत्र के थे। और फारस से भारत में आये। पार्सियों के गुरु "जरदुष्ट" Zoroaster के वंशज है और वहां मगी पुजारी कहाते थे। इस प्रकार पांचवीं शताब्दी तक हम बराबर पार्सियों से विवाह सम्बन्ध करते थे और उनको अपने में मिला लेते थे। हिंदू नेताओं का कर्तव्य है कि पारसी भाइयों को भी जो १६ आना हिन्दू हैं उनको अपनी ओर अपना प्राचीन धार्मिक व रुधिर का संबन्ध बताकर खींचे, ताकि वे अपने आपको हिन्दू कहें क्योंकि पहिले जो लोग ईरान, सीरिया, "एशिया माइनर" श्याम आदि देशों से भारत में आये वे सब हिंदू बनाए गये थे और "आर्य सभ्यता को मानते थे"।

गुर्जर जाति का आर्य्यजाति में प्रवेश।

बहुत से ऐतिहासिकों का मत है कि हूणों के साथ साथ गुर्जर लोग भी विदेश से आये थे। और पहल पहल ये लोग भीनमाल तथा गुर्जत्रा अर्थात गुजरात देश जिसको पुराने जमाने में लाट देश कहते थे, आकर बसे थे। कुछ काल के बाद ये लोग तमाम भारत में फैल गये। चीनी यात्री यूनचंग Yuanchwarg लिखता है कि राजस्थान में सातवीं शताब्दी के प्रथम भाग में ही गूजर लोग हिन्दू जाति में इतने मिलगये थे कि इन को सब क्षत्रिय मानते थे। और यही गूजर प्रसिद्ध "प्रतिहार राजपूत वंश" कनौज में जाकर कहलाया। गुजरात के कुनबी, राजस्थान के "गुर्जरगौड ब्राह्मण" और "बड गूजर राजपूत" सब इसी वंश के हैं। कई प्रान्तों में इनका राज्य भी हो गया था पंजाब का गुजरांवाला तथा गुजरात जिला और बम्बई प्रांत का गुजरात अबतक इसी नाम से प्रसिद्ध है। महीपाल, महेन्द्रपाल राजों को राजशेखर कवि ने "रघुकुलतिलक" लिखकर रघुवंशी प्रकट किया है। वास्तव में ये लोग विदेशी थे। ये लोग आजतक एशिया और यूरोप के बीचमें "कहजार" जो कि गूजर का अपभ्रंश है इस नाम से एक बहुत बडी संख्या में वसते हैं। इनको भी हिन्दू जाति ने अपने में मिलाया था। और अपनी आर्य्य सभ्यता इनको सिखाई थी।

इन्होंने शुद्ध होकर अपने हिन्दू नाम रक्खे। जैसे "वत्सराज" "नागभट्ट" "रामभद्र" आदि। और अपने नाम के आगे हिन्दू धर्मों के नाम लिखने लगे जैसे "परमवैष्णव" "परमभगवद्भक्त" "परमेश्वर" आदिआदि। इन गूजरों के सम्बन्ध में जोधपुर के शिलालेखसे यह प्रमाणित होता है कि ये परिहारों के पूर्वज हैं और ब्राह्मण पिता और क्षत्रिय माता से "परिहार" राजपूत उत्पन्न हुये। चालुक्य वंश जिसने भारत में राज्य किया वह भी इन्हीं गूजरों की संतति हैं। और यह पीछे से "सोलंकी" राजपूत कहलाये। इसी प्रकार चौहान

और परमार राजपूत भी यहीं बाहर से आकर हिन्दू बनाये गये और सब मिल जुल गये। चौहानों का पहिला राजा " पृथिवीराज विजय" के अनुसार "वासुदेव" हुआ और इस वासुदेव का राज्य छठी शताब्दी में मुलतान में था। इसके सिक्कों पर " ससानीयन पल्हवी" भाषा लिखी है इससे ज्ञात होता है कि यह भारत के बाहर से आया था और ब्राह्मण बनगया।

इस वंश का दूसरा राजा " सामन्त " हुआ और उसके लिये बिजौलिया का शिलालेख सिद्ध करता है कि वह ब्राह्मण था अतः चौहान राजपूत ब्राह्मणों के वंशज हैं। "कर्पूरमंजरी" में लिखा है कि ब्राह्मण कवि " राजशेखर " ने चौहान वंश की कन्या 'अवन्तीसुन्दरी' के साथ विवाह किया। इनका "वत्सगोत्र" था। इस प्रकार चौहान पहिले ब्राह्मण थे फिर क्षत्रिय बनगये। "तालगुंड" (माईसोर) के शिलालेख से प्रमाणित होता है कि कदम्ब भी पहिले ब्राह्मण थे फिर क्षत्रिय बन गये। कदम्बों के विषय में लिखा है कि " मानव्य ऋषि" की संतति "हारितपुत्रों" ने तीनों वेद पढकर ब्राह्मणपद को प्राप्त किया और क्योंकि इनके घर के पास कदम्ब का वृक्ष था, इस वास्ते यह कदम्ब कहलाये। इसी कुल में " मयूर शर्मन" नामक वीर योद्धा हुआ। और उसका पुत्र "कंगवर्मन"हुआ। अर्थात् सातवीं शताब्दी तक ब्राह्मणों से क्षत्रिय हो जाते थे और कोई जाति पांति का बन्धन नहीं था।

जिस प्रकार प्रतिहार ब्राह्मण और क्षत्राणी से हुये उसी प्रकार कदम्ब भी ब्राह्मणों से क्षत्रिय बनगये क्योंकि चालुक्यों और कदम्बों का गाढ सम्बन्ध हो गया था। कदम्ब जाति के इसी "मयूरशर्मन" ने हिमालय के पास के "अहिच्छत्र के अग्रहार स्थान से १२००० ब्राह्मणों को लाकर अग्निहोत्र करा कर उनको " माईसोर " में बसाया। ये अबतक माईसोर में विद्यमान हैं। और " हाविक " ब्राह्मण कहलाते हैं। इसी प्रकार " सिंद " जाति भी " अहिच्छत्र " से आई और इनका " नागध्वज पुरवाल भगवती पुरा परमेश्वर " बडा प्रतापी नागराज हुआ। ये लोग "शिवालिक" पर्वत, " हिंदुकुश" पर्वत, " सपादलक्ष पर्वत " पांचाल देश के ऊपर के भाग की तरफ से आते थे। और भारतनिवासियों में मिल जाते थे। यह " अहिच्छत्र " सपादलक्ष की राजधानी था। मुसलमानी काल में सपादलक्ष की सीमा में अजमेर, मारवाड और पंजाब सम्मिलित हो गये। दक्षिण के और उज्जैन के बहुतसे ब्राह्मण अपने आपको " अहिक्षेत्र " से ही आया बतलाते हैं। इन्हीं गूजरों का बडा भारी राजा "प्रकाशादित्य" हुआ है जिसके अबतक सिक्के मिलते हैं और इनके विवाह-सम्बन्ध " बगदाद " तक होते थे। इन सब गूजरों की भिन्न भिन्न क्षत्रिय जातियों को अबतक सब से उच्च अग्निकुल राजपूत मानते हैं। इससे बढकर शुद्धि का क्या उत्तम प्रमाण होगा ?

मैत्रिक जाति का हिन्दू होना

वैसे तो सृष्टि की उत्पत्ति ही सब से ऊंचे स्थान "तिब्बत" पर हुई और वहां से और मध्य एशिया से आर्य्य लोग बराबर लगातार आकर आर्य्यावर्त्त में बसते रहे। परन्तु उन्होंने कभी भी जाति पांति के संकुचित बन्धन नहीं लगाये और जो जो मनुष्यों के समूह आते रहे उनसे लड भिड कर भी उन्हें अपनी सभ्यता सिखाकर अपने में मिलाते रहे। ५वीं शताब्दी में हूणों के साथ साथ कई जातियां आईं जिन का हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। और हम यह भी दर्शा चुके हैं कि उन सब को हिन्दू जाति ने अपने में हडप कर लिया। उन्हीं हूणोंके साथ मैत्रिक या "मिहर" जाति आई। इसी मिहिर का अपभ्रंश मेर है। और इन मैत्रिकों में वल्लभी बडे ही प्रतापी राजा हुये हैं। गुजरात के नागर ब्राह्मणों का इन्हीं वल्लभियों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यद्यपि ये लोग गुजरात के बडौदा राज्य के विसनगर में रहने से नागर ब्राह्मण कहलाये परन्तु वास्तव में ये उत्तर हिन्द के नगरकोट में पहिले बसते थे। जो बंगाल में गये वे वहां मिल गये और बंगालियों के गोत्र इन नागरों से बराबर मिलती है और इसी प्रकार जो भारत के अन्यप्रांतों में गये, वे वहां मिल जुल गये।

भारत के ब्राह्मणों में नागर ब्राह्मण सब से श्रेष्ठ माने गये हैं। H.H. Risley ने (जो भारतवर्ष में प्रसिद्ध जातीय तत्वान्वेषक माने गये हैं) अपने Castes and Tribes of India नामक पुस्तक में लिखा है कि नागर ब्राह्मणों की तहकीकात करने पर मालूम होता है कि सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया तो उसकी सेना के कई सिपाही यहीं भारत में बसगये। उन लोगों ने यहां की स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया उससे जो सन्तान उत्पन्न हुई वह नागर ब्राह्मण कहलाये इनमें सब ही रीति रिवाज वे ही हैं जो यूनानियों में पाये जाते थे। इसकी पुष्टि इनके सिर और नाक के मापसे भी होता है जो Indo Scythian जाति के सिर और नाक के मापसे मिलती है।

क्योंकि ५वीं शताब्दी तक कोई भी जन्म से जाति मानने का प्रमाण नहीं मिलता इस वास्ते ये नागर ब्राह्मणों के पूर्वज भी जैसा जैसा काम करने लगे वैसे वैसे कहलाने लगे।

पृथिवीराज चौहान के वंशज अजमेर मेरवाडे के कई मेर असल चौहान हैं। "मिहिर" क्षत्रियों से सम्बध के कारण शायद मेर कहलाने लगे हों। क्योंकि मेरों में अन्य राजपूतों की गोत्रें भी हैं। राजस्थान के राजपूतों को अपने प्राचीन इतिहास में चौहान, परमार, परिहार, सोलंखियों की उत्पत्ति देखकर इन वीर मेरों को अपने में मिलाने में ज़रा भी संकोच नहीं करना चाहिये।

काम्बोज जाति हिन्दू बनाई गई।

काम्बोज जाति को मनु ने म्लेच्छ लिखा है। इतिहास में इसका विदेशों से

आना पाया जाता है। परन्तु आजकल यह हिन्दू जाति की उपजाति है। और कम्बोहे नाम से भारत के कई मार्गों में बहुत बडी संख्या में बसी हुई है। एक वर्ष पूर्व अमृतसर में इस जाति की एक कान्फ्रेन्स हुई थी। उक्त जाति के हिन्दू इनके हाथ का जल ग्रहण करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते। इसी प्रकार न मालूम कितनी विदेशी जातियों को हिंदुओं ने अपने में मिला लिया होगा।

मुसलमानों का वैष्णव धर्म में प्रवेश।

विचित्र पाचनशक्ति रखनेवाली आर्य्य-जाति ने न केवल अन्य विदेशियों को अपनाया प्रत्युत पुराणों के प्रमाणों से यह भी सिद्ध होता है कि वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों ने लाखों मुसलमानों को वैष्णव धर्म की दीक्षा देकर हिन्दू बनाया। जिस समय भारत में मुसलमानों का राज्य विस्तृत हो रहा था, और लाखों हिंदू मुसलमान हो गये थे, उस समय बंगाल में कृष्णचैतन्य महाप्रभु, जिनको बंगाली गौराङ्ग स्वामी कहते हैं, वैष्णवधर्म का प्रचार करते थे। उन्होंने इस अवस्था को देखकर अपने शिष्य प्रशिष्यों को आज्ञा दी कि मुसलमान हुए हिन्दुओं को वापस लेलो। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पूर्व खण्ड ४ अध्याय २१ में किया है। यथाः —

" श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे कृष्णचैतन्य सेवकाः। दिव्यं मन्त्रं गुरोश्चैव पठित्वा प्रययुः पुरीम्॥ रामानन्दस्य शिष्याः वै अयोध्यायामुपागताः। कृत्वा विलोमं तं मन्त्रं वैष्णवांस्तानकारयन्॥ भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तं तदाभवत्। कण्ठे च तुलसी माला जिह्वा राममयी कृता॥ म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानन्दप्रभावतः॥"

अर्थात् कृष्णचैतन्य के शिष्य अपने गुरु का उपदेश ग्रहण कर सातों पुरियों में गये। रामानन्द के शिष्य अयोध्या में गये और यवनों के मत का खण्डन करके और अपने मत का उपदेश देकर सबको वैष्णव बना लिया। और उनके मस्तकों पर लाल सफेद रंग का त्रिशूलाकार तिलक लगवाया गले में तुलसी की माला पहनाई, रामनाम का उपदेश दिया। रामानन्दजी के प्रभाव से अयोध्या के तमाम मुसलमान वैष्णव बन गये। आचार्य निम्बादित्यजी शिष्यों सहित कांचीपुर गये और मार्ग में समस्त मुसलमान हुवों को वैष्णव धर्म में पुनः मिला लिया उनके मस्तकों में बांस के पत्ते के सदृश तिलक लगाकर और गले में माला डालकर और कृष्ण का नाम जपने का उपदेश देकर हिन्दू बनाया। इसी प्रकार विष्णुस्वामी वाणीभूषण आदिकों ने हरिद्वार, काशी आदि तीर्थस्थानोंमें जाकर तमाम मुसलमानों को वैष्णव बनाया था। अबदुल करीम उर्फेरसखां को मुसलमान से वल्लभाचार्यजी ने हिन्दू बनाकर वैष्णवधर्म में दीक्षित किया था।

यम और नियमोंका महत्त्व।

(लेखक— म० लालचन्द्रजी.)

" अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः। पा. योगसूत्र.

एक आदर्श रखने वाले व्यक्तियों के समूह को "समाज" कहा करते हैं, किन्तु व्यक्ति और समाज के वर्तव्य में भिन्नता है, जो नियम की व्यक्तिकी उन्नति के लिये पर्याप्त हैं उनसे कहीं कडे नियम समाजकी स्थितिके लिये आवश्यक होते हैं। यदि एक मनुष्य पवित्र, सन्तोषी, तपस्वी, सहनशील, स्वाध्यायी और परमात्माका भक्त हो, तो वह उन्नतिके पथ से च्युत नहीं हो सकता, यदि संसारमें उसके सिवाय उसका किसी और से सम्बन्ध न हो। पर ज्योंही यह निश्चित हुआ कि एक मनुष्य का दूसरेसे सम्पर्क अनिवार्य है तो यह भी आवश्यक हो गया कि एक मनुष्य अपना आचरण इस प्रकार बनावे कि वह अपने स्वत्व कि रक्षा करता हुआ कहीं दूसरों के स्वत्व और अधिकारों पर जो हस्तक्षेप नहीं करता, इस लिये यह आवश्यक हुआ कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को समाज की स्थिति और प्रगतिके लिये, समाज का प्रत्येक व्यक्ति अवश्य पालन करे, वरना समाजके छिन्न भिन्न होने का भय हो जाता है, यदि किसी समाजके व्यक्ति आपसमें द्वेषभाव रखेंगे और एक दूसरेकी हिंसा प्रतिहिंसा करेंगे तो वह समाज, सामाजिक दृष्टिसे उन्नत होनेके स्थान अवश्य अवनत होगा। अकेले मनुष्य को जब संसारमें किसी और से संपर्क हो न हो तो केवल ऐसा आचरण पर्याप्त है, कि जिससे वह अकेला अपनी स्थिति रख सके और उन्नति भी कर सके। वह अपनी सत्ता और ईश्वरकी सत्ताका माननेवाला है उसका आचरण पवित्र है, वह प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध है, उसका हृदयतंत्र प्रकृतिके अनुकूल है, वह प्रकृति की भिन्न अवस्थाओं को सन्तोष और सहनशीलतासे बिताता है। शीतोष्ण में प्रसन्न रहता है उसके सामने सत्य असत्य का प्रश्न ही नहीं आता, क्यों कि सिवाय उसके और परमात्माके और कोई है ही नहीं और यद्यपि उसका जीवन सत्यमय है पर सत्य और असत्यकी परख उसे दुःख नहीं देती सत्य यद्यपि सदैव स्थित है पर सत्यका निरूपण जभी करना पडता है जब एक व्यक्तिका दूसरे से सम्पर्क हो। अस्तेय की जो वास्तवमें बिना दूसरे व्यक्तिके अस्तित्व के आवश्यकता ही नहीं। अकेले व्यक्तिके लिये जो शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान, यह पांच नियम लिखे हैं यदि कोई व्यक्ति उन सब को पूरा निभाये तो यह कहा जा सकता है कि वह आचारवान् है, उसका आचरण श्रेष्ठ है और श्रेष्ठ होने की सब से बडी

कसौटी यही है कि वह ईश्वर प्रणिधानतक अनुभव करता है। ब्रह्मचर्य के वास्तविक अर्थ भी उच्च आचरण के ही हैं जो बिना वीर्यरक्षा के कदापि सिद्ध हो नहीं सकता। परन्तु प्रकृति के अनकूल जीवन व्यतीत करनेवाला व्यक्ति स्वतःसिद्ध समाधिको ईश्वर प्रणिधानद्वारा ही लाभ कर लेता है और सच्चे अर्थों में स्व - अध्ययन रूपी स्वाध्याय करता है न कि केवल पुस्तकों का पाठ। इसी लिये वह ब्रह्मचारी है उसका गमन ब्रह्म नाम परमात्मा की ओर है और उसे ईश्वरप्रणिधान, स्वाध्याय, जप, संतोष और पवित्रता के सहारे अधिकार प्राप्त है। पर ज्योंही मनुष्य को दूसरे मनुष्यो से सम्पर्क हुआ उसे अवश्य अपनी और अपने द्वारा समाजकी रक्षा के हेतु आचरण समाज की रक्षाका साधन बनाना होता है और इस नियमित जीवनको ब्रह्मचर्यका जीवन कहते हैं, ब्रह्मचर्य में आजन्म स्त्रीका निषेध नहीं है, यद्यपि जो विवाह न करे वह आदित्य ब्रह्मचारी कहाता है परंतु वीर्यरक्षा करता हुआ, उत्तम सन्तान की वृद्धि करना और ऋतुगामी होना ब्रह्मचर्य ही कहाता है और यह अनुभव हम प्रति ऋतु में प्रकृति में भी देखते हैं कि सब की सब प्रकृति अपनी अपनी ऋतुमें पुष्पवती और फलवती होती है। ऋतुकाल के पश्चात् गर्भधारण करने वाली पत्नी को भी पुष्पवती कहते हैं। श्रेष्ठ आचरण की फलरूप अवस्था अपरिग्रह है उसे चाहे आत्मसंयम कहिये। समाज में रहकर संयम आवश्यक हो जाता है अकेला मनुष्य यदि संयमी न भी हो तो केवल अपना आप ही खाता है किन्तु जब व्यक्ति समाज का भाग होता है तो उस के लिये संयमी होना उसकी अपनी स्थिति और वृद्धि और समाज की रक्षाके लिये आवश्यक है। इसी लिये भगवान मनुने आदेश किया है कि मनुष्य समाजमें बुद्धिमान केवल शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधानरूपी पाच नियमों को ही पालन करता हुआ सफल नहीं हो सकता उसे अवश्य अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह नाम पांच यमों को भी निभाना होगा।

यह तो रहा व्यक्ति के कर्तव्यो का विधान जो उसे समाज में रहकर अवश्य निभाने चाहिये पर यदि एक व्यक्ति अपने कर्तव्य न करेतो क्या किया जाय? ऐसी अवस्था में प्रत्येक कर्तव्य के भंग करने के लिये दण्डका विधान होना आवश्यक है और दण्ड देने का अधिकार समाज को ही होना चाहिये क्योंकि समाजका प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्तव्य न करता हुआ न केवल अपनी हानि करता है पर साथ ही समाज की भी हानि करता है। समाज के किसी भी व्यक्तिका पतित होना समाजमें दोषका आना होता है और इसी लिये मानवधर्मशास्त्र में यह आदेश है कि जो मनुष्य वेदको त्याग कर कहीं और श्रम करता है अर्थात् वेदके अनुसार जो व्यक्ति जीवन नहीं बनाता उसे द्विजों की पंक्तिसे

हटा दिया जावे। यह तो हुआ समाजसे बहिष्कार। पर प्रश्न यह है कि यदि एक मनुष्य ऐसे निन्दित कर्म करे कि वह अपने आपको गिराने के अतिरिक्त समाजके पतन का भी कारण हो। उदाहरण के तौर पर चोरी करना, झूट बोलना आदि तो क्या समाज उसे बहिष्कार कर दे अथवा किसी प्रकार उसे आचारवान बनाने का यत्न करे। यदि बडे छोटे सब अपराधों के लिये बहिष्कार ही एकमात्र उपाय हो तो एक समय ऐसा आसकता है जब कि बहिष्कार किये हुओं की संख्या में वृद्धि होते वे साधारण समाज का प्रतिकार करने में संगठित हो जावेंगे। बहिष्कार भी केवल उसी समयतक हो सकता है जब तक समाज की अवस्था योग्य हो और धार्मिक मनुष्यों की संख्या पर्याप्त हो तब तक तो शास्त्र विरुध्द कार्य करनेवालों को बुरा कहा जा सकता है। किंतु यदि किसी समय समाज में अधिकता ऐसे मनुष्यों की हो जाय जो मान मर्यादा धर्म कर्तव्य आदिसे विमुख हों तो उस समय समाज की स्थिति उसी रूप में होगी और प्रगति वैसी ही होगी जैसी कि वह चाहेगा। ऐसे समय में सत्यार्थी लोगों को सत्याग्रह करने की आवश्यकता होती है और संसार का इतिहास ऐसे उदाहरणोंसे भरा हुआ है जहां कि समाज के अत्याचारों से सत्यनिष्ठ धर्मपरायण लोग पीडित हुए हैं। से चाहे व्यक्ति के कर्तव्य की ओर दृष्टि दे चाहे समाजकी। जब तक व्यक्ति और समाज ऐसे सर्वतन्त्र मानुषिक उन्नति के नियमों पर स्थिर नहीं रहते तब तक समाज में चाहे किसी विशेष ढंग की स्थिरता कुछ कालतक हो सके पर परस्पर हितके न होने के कारण समाज चिरकाल तक उन्नत नहीं रह सकता। संसार में स्थायी विजय केवल सत्य की ही हो सकती है। किसी समय कोई विशेष जन समूह चाहे धर्मसे च्युत होकर, कर्तव्यसे विमुख होकर कुछ कालतक अपना डंका बजाले पर अटल ऋत और सत्य जो परमात्मा के सार्वभौम नियम है उनके आगे सिर झुकाना ही पडता है।

साधारणतया यदि यह मानलिया जाय कि किसी भी देशकी नीति उस देशके रहने वालों की बहुमत सम्मति के अनुसार हुआ करती है तो यह अत्यावश्यक है कि नेता लोग सच्चरित्र हो ता कि देशवासियों की सम्मति जिसपर कि देश की नीति का निर्भर है पवित्र और निष्कलंक रह सके। यदि जनताकी शिक्षा व प्रबन्ध सत्यता की ओर न होगा तो संभव है कि देशवासियों की रुचिसंकुचित हो जाए और वे या तो आपस में हिंसा प्रतिहिंसा, अथवा फूट, चोरी, व्यभिचार आदि में निमग्न रहकर अपने आप को खोदें अथवा आपसमें ऐसे समूह स्वार्थ के कारण बनालें कि सारे समाज कि वृद्धि के स्थान आपस में झगडे और ईर्षा और द्वेष कि वृद्धि हो जाय अथवा स्वार्थरत एक विचित्र सामुहिक रूप में

प्रगट होकर सारे देशका समाज किसी अन्य देशवासियोंके स्वत्व के छीन लेने के लिये देशसेवा के ढोंग से तुल पडे । समाज की अवस्था और प्रगति विचित्र है इस में संशय नहीं कि किसी समाज की नीति और उसका आदर्श व्यक्तियों की नीति और आदर्श की ही झलक होती है पर ऐसा देखा गया है कि जब मनुष्यों में व्यक्तित्व शक्तिका ह्रास हो जाता है तो समाज की नीति उसके कतिपय नेताओं के चित्त की वृत्तिपर ही निर्भर होती है और साधारण जनता भेडों की भांति अपने नेताओं की आज्ञा पालते है ऐसी अवस्था में समाज सच्चे अर्थों में जीवित नहीं कही जाती। ऐसी समाजमें अधिकार बहुमत द्वारा निश्चित नहीं होता पर केवल नेताओंके इशारे पर ही समाज की गति रहती है। समाज की स्थिति और उत्तरोत्तर वृद्धिके लिये व्यक्तिओंका आचारवान् होना आवश्यक है और साथ ही व्यक्तियों में निजी व्यक्तित्व शक्तिका होना भी अनिवार्य है। जिस मनुष्यमें निजी व्यक्तित्व विकास नहीं पाता वह मनुष्य कभी उत्कर्ष और आत्म-सम्मान के रहस्य को नहीं समझ सकता, किन्तु व्यक्तित्व का विकास समाज के हित के लिये हो, अर्थात कोई भी व्यक्ति केवल निजी उन्नति में ही सन्तुष्ट न रहकर अपने परिवार, अपने पडौसी, अपने गांव अथवा अपने मुहल्ले की उन्नति में भी उचित भाग ले और जब तक अपने चहुं ओर अपने अनुकूल वायुमण्डल न बना ले तब तक अपने दायित्व से आपको उऋण न समझे। यह पारस्परिक दायित्व है। उस भाव के उदय होने से व्यक्तियों में सहानुभूति होकर समाज का संगठन हुआ करता है। प्रत्येक व्यक्ति न केवल अपने ही लिये जिये परं च अपने आप को समाज का भाग समझता हुआ, यह जानता हुआ कि उसके लिये हुए कर्म समाज पर अवश्य प्रभाव डालते हैं अपने जीवन को रहस्य बनाकर परस्पर हित के लिये ही साधन करे, यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना उत्तरदायित्व अनुभव करे तो संसार में दुःख और क्लेश की मात्रा बहुत कम हो जाय। उदाहरण के तौर पर देखिये, कि प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन व्यवहार में वायुमंडल में भश्वास द्वारा और मलमूत्र द्वारा वायुमण्डल को गन्दा करता है पर उसकी शुद्धि का दायित्व अपने ऊपर नहीं लेता। यह बात पुराने आर्योंने अनुभव की और हवन यज्ञ की प्रथा चलकर व्यक्ति के दायित्व को निश्चित किया कि प्रत्येक व्यक्ति इसलिये हवनद्वारा वायुमंडल को शुद्ध करे कि उसने अपनी जीवनचर्या में अनिवार्य तौर पर कुछ परिणाम में उसे अशुद्ध किया है। इसी प्रकार जब यह पता लग जाय कि शब्द का नाश नहीं होता तो अवश्यमेव किसी व्यक्तिका यह अधिकार नहीं कि वह ऐसे शब्द उच्चारण करे जिनसे वायुमण्डल में ओज हो और जो अन्य व्यक्तियों के कानोंद्वारा जाकर उन के मन और अन्तःकरण पर आघात पहुंचावें। अतः प्रत्येक

कर्म जो एक व्यक्ति करता है वह अवश्यमेव उसके कारण उसके मिलने वालोंपर प्रभाव डालता है,इसी हेतु भगवान् कृष्ण ने कहा था, कि मैं कर्तव्य इस लिये पालन करता हूं कि यदि मैं अपना कर्तव्य न पालन करूं तो सर्व साधारण में व्यभिचार के फैलानेका दोषी मैं बनूंगा । जब कि यह सिद्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति के किये हुए कर्म उसके आसपास के व्यक्तियों पर प्रभाव डाले विना नहीं रहते तो समाज के हित के लिये व्यक्ति को सदैव शुभ कार्य ही करने चाहिये ताकि उसके कर्म से औरों की हानि न हो ।

जब तक व्यक्ति स्वार्थ के मदमें अन्धा नहीं होता तब तक समाज में हानि नहीं आती । पर यदि कभी ऐसी स्थिति आजाय कि एक समाज सामुहिक दृष्टि में स्वार्थान्ध होजाय और व्यक्तिगत उन्नति को न सह सके जैसा कि प्रायः आज कल की बिरादरियों में देखा जाता है तो ऐसे समयमें दोष उन थोडे व्यक्तियों का हुआ करता है जो संकुचित भाव रखते हुए समाजके बल को व्यक्तिके विरोध में लगा देते हैं । यह अवस्था सामाजिक अन्याय की अवस्था है और ऐसी स्थितिमें व्यक्तिका अधिकार है कि वह सत्य सिद्धान्त को सामने रखकर समाज के विरोधके लिये सत्य के आश्रय कटिबद्ध हो जाय और समाजकी बागडोर ऐसे लोगों के हाथ से निकालकर परोपकारी और परस्पर उन्नति की रक्षा करने वाले व्यक्तियों के हाथ में लाये विना सन्तुष्ट न हों। समाज का अन्याय व्यक्तिके अन्याय से भी अधिक दारुण हुआ करता है और इस अन्याय के नीचे दब जाना आचारवान व्यक्तिके लिये अयोग्य है । इस लिये धर्म अधर्म के निश्चय करने के लिये केवल समाज की संमती ही पर्याप्त नहीं हो सकती। मनुष्य को सत्यसिद्धान्त की आवश्यकता है कि जो व्यक्ति और समाज दोनों को सीमाबद्ध रखे और मनुष्य के उत्तरोत्तर विकास में बाधा न पडे । यह सत्य ज्ञान भगवानने सृष्टि की आदिमें ही वेदमें दिया है । वेदमें व्यक्ति जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन आदि सब विषयों पर मनुष्य के लिये पूर्ण शिक्षा दी है और उस शिक्षा के अनुकूल चलने में ही मनुष्य का कल्याण है ।

इस में कुछ सन्देह नहीं कि मनुष्य विचार करने और कार्य करने में स्वतंत्र है पर मर्यादा रहित कार्य स्वतंत्रता की ओर न ले जाकर मनुष्य को निःशृंखलता की ओर ले जाता है । मर्यादायुक्त जीवन ही स्वतंत्रता का हेतु है । स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये संयम की आवश्यकता है । संयम जितना व्यक्तिके लिये आवश्यक है उतना ही बल्कि उससे भी अधिक समाजके लिये आवश्यक है । कोई मनुष्य यह अधिकार नहीं रखता कि वह ऐसा कर्म करे जिससे दूसरे मनुष्य की हानि हो ॥

गुरुकुल कांगड़ी से " अलंकार "

यह मासिक पत्र गुरुकुल के स्नातकमण्डल की ओर से प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार के सम्पादकत्व में एक वर्ष से निकल रहा है। आर्य समाज के क्षेत्र में यह अपने ढंग का अनूठा ही पत्र है। यह पत्र गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर विश्वास रखने वालों, प्राचीन आर्य सभ्यता से प्रेम करने वालों तथा वैदिक रहस्यों की खोज करने वालों के लिये अद्वितीय है। नये ग्राहकों को अलंकार का

शताब्दी-अङ्क मुफ्त

मिलेगा। अलङ्कार के शताब्दी अंक ने सब पत्रों के शताब्दी अंकों को मात कर दिया है। " मतवाला " लिखता है कि अलंकार के शताब्दी अङ्क ने रिकार्ड बीट कर दिया है। इस अंक में गुरुकुल के बहुत से चित्र दिये गये हैं। अलंकार का शताब्दी - अंक आर्य समाज के साहित्य में स्थिर रहेगा। मूल्य १२ आने से घटा कर ८ आने कर दिया गया है परंतु ' अलंकार ' के नये ग्राहकों को यह अंक मुफ्त मिलेगा।

' अलंकार ' का नया वर्ष अगले महीने से प्रारंभ होने वाला है अतः दूसरे वर्ष के शुरू से ही ग्राहक बन जाइये। वार्षिक मूल्य तीन रुपया।

प्रबन्धकर्ता-अलंकार गुरुकुल कांगड़ी
(बिजनौर)

स्वाध्याय के ग्रंथ।

—३—

[१] यजुर्वेदका स्वाध्याय।

(१) य. अ. ३० की व्याख्या। नरमेध।
मनुष्योंकी सची उन्नतिका सच्चा साधन।१)

(२) य. अ. ३२ का व्याख्या। सर्वमेध।
"एक ईश्वरकी उपासना।" मू. ॥)

(३) य. अ. ३६ की व्याख्या। शांतिकरण।
"सची शांतिका सच्चा उपाय।" मू ॥)

[२] देवता-परिचय ग्रंथ माला।

(१) रुद्र देवताका परिचय। मू. ॥=)
(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता। मू. ॥=)
(३) ३३ देवताओंका विचार। मू. =)
(४) देवताविचार। मू. =)
(५) वैदिक अग्नि विद्या। मू. १॥

[३] योग-साधन-माला।

(१) संध्योपासना। मू. १॥
(२) संध्याका अनुष्ठान। मू. ॥)
(३) वैदिक-प्राण-विद्या। मू. १
(४) ब्रह्मचर्य। मू. १।
(५) योग साधन की तैयारी। मू. १
(६) योग के आसन मू. २)
(७) सूर्यभेदन व्यायाम। मू. ।=

[४] धर्म-शिक्षाके ग्रंथ।

(१) बालकोंकी धर्मशिक्षा। प्रथमभाग -)
(२) बालकोंकी धर्मशिक्षा। द्वितीयभाग =)
(३) वैदिक पाठ माला। प्रथम पुस्तक ≡)

[५] स्वयं शिक्षक माला।

(१) वेदका स्वयं शिक्षक। प्रथमभाग। १॥)
(२) वेदका स्वयं शिक्षक। द्वितीय भाग १॥)

[६] आगम-निबंध-माला।

(१) वैदिक राज्य पद्धति। मू. ।-)
(२) मानवी आयुष्य। मू. ।)
(३) वैदिक सभ्यता। मू. ॥।)
(४) वैदिक चिकित्सा-शास्त्र। मू. ।)
(५) वैदिक स्वराज्यकी महिमा। मू. ॥)
(६) वैदिक सर्प-विद्या। मू. ॥)
(७) मृत्युको दूर करनेका उपाय। मू. ॥)
(८) वेदमें चर्खा। मू. ॥)
(९) शिव संकल्पका विजय। मू. ॥।)
(१०) वैदिक धर्मकी विशेषता। मू. ॥)
(११) तर्कसे वेदका अर्थ। मू. ॥)
(१२) वेदमें रोगजंतुशास्त्र। मू. ≡)
(१३) ब्रह्मचर्यका विघ्न। मू. =)
(१४) वेदमें लोहेके कारखाने। मू. ।-)
(१५) वेदमें कृषिविद्या। मू. ≡)
(१६) वैदिक जलविद्या। मू. =)
(१७) आत्मशक्तिका विकास। मू. ।-)

[७] उपनिषद् ग्रंथ माला।

(१) ईश उपनिषद् की व्याख्या। ॥=)
(२) केन उपनिषद् ,, ,, मू. १।)

[८] ब्राह्मण बोध माला।

(१) शतपथ बोधामृत। मू. ।)

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल;
औंध (जि. सतारा)

गुरुकुल कांगडी से " अलंकार "

यह मासिक पत्र गुरुकुल के स्नातकमण्डल की ओर से प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धांतालंकार के सम्पादकत्व में एक वर्ष से निकल रहा है। आर्य समाज के क्षेत्र में यह अपने ढंग का अनूठा ही पत्र है। यह पत्र गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर विश्वास रखने वालों, प्राचीन आर्य सभ्यता से प्रेम करने वालों तथा वैदिक रहस्यों की खोज करने वालों के लिये अद्वितीय है। नये ग्राहकों को अलंकार का

शताब्दी-अङ्क मुफ्त

मिलेगा। अलङ्कार के शताब्दी अंक ने सब पत्रों के शताब्दी अंकों को मात कर दिया है। " मतवाला " लिखता है कि अलंकार के शताब्दी अङ्क ने रिकार्ड बीट कर दिया है। इस अंक में गुरुकुल के बहुत से चित्र दिये गये हैं। अलंकार का शताब्दी – अंक आर्य समाज के साहित्य में स्थिर रहेगा। मूल्य १२ आने से घटा कर ८ आने कर दिया गया है परंतु ' अलंकार ' के नये ग्राहकों को यह अंक मुफ्त मिलेगा।

' अलंकार ' का नया वर्ष अगले महीने से प्रारंभ होने वाला है अतः दूसरे वर्ष के शुरू से ही ग्राहक बन जाइये। वार्षिक मूल्य तीन रुपया।

प्रबन्धकर्ता–अलंकार गुरुकुल कांगडी
(बिजनौर।)